ओ३म्

# सन्ध्या-रहस्य

लेखकः—

श्री पं० चमूपति जी एम. ए.

प्रकाशकः—

राजपाल, प्रबन्धकर्त्ता—
आर्य्य पुस्तकालय, लाहौर।

पं० छज्जूराम के प्रबन्ध से
भारद्वाज प्रिंटिङ्ग प्रेस, लाहौर में छपा।

चतुर्थ वार ] [ मूल्य ।≡)

# विषय सूची ।

विषय — पृष्ठ

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः

गुरुकुल पुस्तकालय कांगडी.

# भूमिका ।

## १—सच्चा स्थायी बीमा ।

ओ३म् वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम् । ओ३म् क्रतोस्मर क्लिबेस्मर कृतꣳस्मर ॥ यजु० अ० ४० । मं० १६ ॥

प्राण जीवन की कला है। इसके चलने से शरीर चलता है, इसके रुकने से शरीर रुक जाता है। परमात्मा ने प्राणों की गति में कुछ ऐसा अनुपात रक्खा है, कि एक श्वास प्रश्वास की मात्रा बिगड़ी नहीं, और यह अद्भुत यन्त्र विकृत हुआ नहीं। इसी गति के बिगाड़ का फल रोग और इसी का फल अन्त को मृत्यु है। जब यह बोलता चालता पार्थिव पुतला

अचानक मौन साध बैठा, अर्थात् जीव ने शरीर से प्रस्थान किया, तो इसे ज्वाला की भेंट चढ़ाएंगे। उसका सारा सौन्दर्य्य तथा बल भस्म की मुट्ठी होगा। फिर तो प्राण-वायु वायु-तत्त्व में जा मिलेगा। मृत शरीर में भी वायु का प्रवाह तो होगा, परन्तु प्राण रूप में नहीं। तब उस शरीर से जीव का क्या सम्बन्ध ?

उस समय जीवकी अवस्था उस धनाढ्य की सी होगी, जिसने सारी आयु संसार में घूम २ कर वैभव इकट्ठा किया, एड़ी चोटी का बल लगाकर पूंजी कमाई, सारे घर को धनधान्य से भर दिया, अकस्मात् एक दिन लकड़ी के ढेर में चिनगारी सुलगती रहने से भवन में आग लग गई। ईश्वर ने इतनी ही कृपा की कि कार्यवश गृह-स्वामी कुटुम्ब सहित घर से बाहर

था। लो! उन कपड़ों को आग लग रही है जो देश विदेश के कारखानों से आए थे, कुर्सियां और मेज़ें ज्वाला के मुख में हैं। जिन दीवारों की सफ़ेदी बिगड़ने के भय से माघ के शीत में आग न जलाते थे, आज ईंधन ने उन पर काला रोगन कर दिया। पुस्तकों का तो नाम ही न रहा। उनके पत्र तथा अक्षर सब ने मसि का चोला स्वीकार किया है।

कड़! कड़!! कड़!!! शहतीर तथा कड़ियां गिर रही हैं। जो सामग्री जलने की न थी, वह उनके दबाव से टूट गई। अब तो न बर्तन रहे, न भूषण, न कोई और नित्य-निर्वाह की सामग्री। लाख का घर राख हुआ जाता है। पानी का एंजन आता है और गगन-चुम्बी ज्वालाओं को बुझाता है। पर जो पदार्थ नष्ट-

हुए, उन को फिर से कौन लौटा लायेगा।

नगर का एक प्रसिद्ध धनाढ्य पिस गया। आओ! हम भी आर्थिक सहायता न सही, मौखिक सहानुभूति तो प्रगट कर दें। हम मुख को कुछ शोकावृत सा बना लेते हैं कि सहानुभूति हार्दिक प्रतीत हो। पर सेठ जी के मुख की कली वैसा ही प्रफुल्लित है, जैसी आग की आपत्ति से पूर्व थी। कहते हैं:-"य कोई मेरा बड़ा गोदाम न था। मेरा धन किसी विशेष स्थान में अथवा सामग्री के रूप में स्थित नहीं, किन्तु सारा व्यवसायों में लगा है। कम्पनियों में हिस्से हैं, अपने कार्य्यालय हैं, जिनसे स्थायी आय आती है। जो भवन जल गया, इसका भी बीमा करा दिया था। सो चिट्ठी भेजी है, रुपया आजायेगा, फिर नया भवन बनवा लेंगे।"

शरीर-रूपी भवन को भस्म होते देखने वाले जीव! क्या तेरे मन की भी यही अवस्था है, जो उक्त सेठ की थी? क्या तेरी शारीरिक सम्पत्ति भी व्यवसाय-गत है? क्या इससे तुझे स्थायी आय है? अर्थात् तेरी शारीरिक शक्तियों का प्रयोग ऐसा है, जिस से आत्मिक बल सदैव बढ़े? तूने अपने भवन का बीमा कराया या नहीं? क्या इस शरीर के छूटने पर इससे अच्छा शरीर मिलेगा? या मरे पीछे तू मुक्तिधाम को प्राप्त हो जाएगा? यदि अब तक यह यत्न नहीं किया तो आ! अब करें।

## २-आत्मिक बही की पड़ताल।

किसी प्रकार की भी उन्नति करने से पूर्व आवश्यक है कि अपनी वर्तमान अवस्था का पूरा ज्ञान प्राप्त किया जाए।

व्यापारी दूसरे दिन की बिक्री उसी समय करता है, जब पहले दिन की विध मिला चुके। अर्थात् आय व्यय की तुलना करके देख ले कि कितना बचा है? जिसको अपनी पूंजी का पता नहीं, वह उसकी वृद्धि के उपाय क्योंकर करेगा?

प्रिय मुमुक्षो! तू पहिले अपनी आत्मिक अवस्था पर दृष्टि डाल। वेद कहता है—"कृत ऽस्मर" अर्थात् अपने किये को याद कर। क्या कहीं शिथिलता है? त्रुटियां हैं? आलस्य उनकी निवृत्ति में बाधक है? समाज का भय उठने नहीं देता? लज्जा के कारण निर्बल है? ले! इसका भी एक अचूक उपाय है। "क्लिवे स्मर" अर्थात् बल के लिए स्मरण कर। किस का? "ओं स्मर" अर्थात् उस पवित्र, पतितपावन, बल के पुंज, सर्व-शक्ति के

आधार, धर्म्मस्वरूप, तेज के स्रोत प्रभु परमात्मा का। बस यही तीन कार्य्य हैं, जो तुझे प्रतिदिन करने हैं। (१) अपने आचरण पर ध्यान देना, (२) उस में आई त्रुटियों को विचार-गोचर रखना, और (३) सब बलों के भण्डार सर्व-शक्तिमान् का स्मरण करना।

लोगोंने मृत्यु को भयानक समझा है। वास्तव में मृत्यु एक परिवर्तन है। मरते हुए पं० गुरुदत्त से लोगों ने पूछा—"आप प्रसन्न क्यों हैं?" कहा—"इस देह में दयानन्द न हो सके थे, इससे उत्तम देह पाएंगे तो दयानन्द बनेंगे"। जो परिवर्तन उन्नति का द्वार हो, उसका स्वागत खुले दिल से किया जाता है। जिस से पतन की सम्भावना हो, उस से डरते हैं। मृत्यु शत्रु है तो उसे जीत। घबराने से

और भीरु होगा।

## शक्तिमान् के स्मरण से शक्ति।

शङ्का हो सकती है कि परमात्मा के स्मरण-मात्र से ही शक्ति क्योंकर आएगी? यह बात जितनी गूढ़ है, उतनी आनन्द-प्रद भी है। बच्चा नङ्ग-सिर गली में खेलता है। अपने विचारानुसार जिस बालक को अपने से अच्छा समझता है, उस का अनुकरण करने लगता है। वह लाल रंग का कुरता पहिने है, तो इसे भी लाल रंग का कुरता चाहिए। बड़ा हुआ, पाठशाला गया। अपने सह-पाठियों में से किसी को आदर्श विद्यार्थी जानकर उस का अनुकरण करता है। छोटी श्रेणियों के लिए बड़ी श्रेणियों के विद्यार्थी आचार व्यवहार में नेता हैं। बड़ों के लिए उन का अध्यापक। यही अवस्था मनुष्य के

सम्पूर्ण जीवन में बनी रहती है। कहते हैं, मरते समय भी जैसे संकल्प होते हैं वैसी ही योनि आगे मिलती है। कथन का सार यह कि मनुष्य विना मानसिक आदर्श के नहीं रह सक्ता। कौन कह सक्ता है कि इस ख़याली नेताओं के नित्यंप्रति चिन्तन से बालक तथा मनुष्य की आत्मा को क्या लाभ अथवा हानि पहुंची? यह लोकोक्ति अक्षरशःसत्य है:—

As a man thinketh so he becometh. अर्थात् जैसा मनुष्य सोचता है वैसा वह बन जाता है।

गर्भिणी माता के हृदय में जो संकल्प विकल्प उठते रहते हैं, वही गर्भ-स्थित बच्चे के मानसिक जीवन का आधार बनते हैं। यदि मनन-शक्ति इतनी प्रभावशालिनी है, तो उस परमेश्वर के गुणों

के स्मरण का लाभ जिसे नित्य, शुद्ध, बुद्ध, सर्व-शक्तिमान् इत्यादि विशेषणों से युक्त कहा है, क्या २ चमत्कार न दिखाएगा? एडीसन[1] की माता एडीसन

१ पाताल देश (एमेरिका) का प्रसिद्ध वैज्ञानिक आविष्कर्त्ता सन् १८४७ ई० मे उत्पन्न हुआ। किसी रेलवे में समाचार-पत्र बांटा करता था। एक छापा मिलने पर वहीं अपना पत्र निकाल दिया। इस के पीछे Automatic Telegraph Repeater स्वयं चलने वाली तार की घण्टी, Carbon Telephone कर्बन का दूर श्रावक यन्त्र Electric Fire-arm वैद्युत आग्नेय अस्त्र, Electric Railway ( विद्युत की रेल गाड़ी ), Phonograph ( ध्वनि-लेखक ) Phonometer ( शब्द मापक ), Edison system of lighting ( एडिसन की प्रकाशन विधि ) इत्यादि यन्त्र तथा कलाएं बनाईं।

को पेट में रखती हुई निरन्तर वैज्ञानिक यन्त्रों का ध्यान करती रही, तो एडीसन संसार भर का बड़ा विज्ञान वेत्ता हुआ, और मङ्गलादि नक्षत्रों से विद्युत् द्वारा वार्त्तालाप का सम्बन्ध स्थिर करने लगा। एवं उपासक भी अपने हृदय-गर्भ में सर्व-शक्तिमान् का ध्यान धारण करे तो अवश्य उस का आत्मा अपूर्व-शक्ति को प्राप्त हो। बलवान् का स्मरण करना वास्तव में बल के लिये अपनी आत्मा के किवाड़ खोलना है।

तो फिर आ! उन्नति के पिपासो! एक तो अपने नित्यकृत्योंकी पड़ताल किया कर। दूसरे उस दुःखों के मोचनहार मुक्त स्वभाव को सदैव दृष्टिगोचर रख, जिस का स्मरण सर्वतःकल्याण-प्रद है। उस मिट्ठे के पौदे की भांति, जो नारङ्गी के साथ

जोड़ा जाकर स्वयं नारङ्गी का वृत्त बन जाता है, और "सङ्गतरे" के नाम से स्पष्टतया जताता है, कि मैं उत्तम सङ्ग से तर गया हूं, तू भी उस प्रियतम को अपनी दृष्टि का तारा बना और उसकी ज्योति में ज्योतिर्मय बन जा। फिर देख, अन्धकार निकट भी फटकता है? हां, हां उस निस्संग के उत्तम संग से तर।

---

## ४—दैनिक ब्रह्मचर्य्य तथा दैनिक संन्यास।

क्या तू इस भ्रम में पड़ गया कि तुझे घर बार त्याग, बन में कुटिया बनाकर रहने का उपदेश हुआ? भोले भाले! वृथा भयभीत मत हो! ईश्वर ने भी तो तेरे कुटुम्ब को नहीं त्यागा, तू इसे क्यों

त्यागेगा? प्रकृति के दबाव में आने से जीव दबता है, उस पर अधिकार पाने से उन्नत होता है। तू संसार से उच्च है। संसार को अपने पीछे लगा। अपने सामर्थ्य के कोष को खोल! अपने ऊपर विश्वास कर, और सारे संसार का नमस्कार ले! एकान्तवास का तुझे इस लिए उपदेश नहीं देते, कि तू जड़ पदार्थों तथा उनमें लिप्त जीवों से डर कर छिप जाए। जड़ में इतनी सामर्थ्य कहां कि शुद्ध चेतन पर प्रभुत्व रखे? और जो चेतन जड़ प्रकृति के हथकण्डों में आचुके हैं, वह जड़ों से भी गए गुज़रे जड़तम हैं। तुझे तो एकान्त-ग्रहण की सम्मति इसलिए देते हैं कि तू अपने बल को इकट्ठा करले। पहिलवान कुश्ती में आने से पूर्व लङ्गर लङ्गोट कस लेता

है। योद्धा अस्त्र बाँधकर रण-क्षेत्र में उतरता है। तू भी स्वशस्त्रों से सुसज्जित हो। ज्यों २ दिन चढ़ेगा, त्यों २ संसार का रण-क्षेत्र तपता जायगा, और तुझे उत्साह-पूर्वक संग्राम में भाग लेना होगा। तू प्रातः समय ही अपने बल का एकाग्र-मन द्वारा संग्रह कर। चढ़ती कला सब संसार का भला! संसार भर के धार्मिक तथा सामाजिक नेता संसार से पृथक् न हुए, इसी में विचरे, परन्तु कुछ समय के लिए उन्हें तप करना आवश्यक था। महात्मा बुद्ध[1] के सम्बन्धी भ्रम वश यह समझते रहे कि राजकुमार घर बार से

१—बौद्ध धर्म के प्रवर्तक। ५५० ई०पू० अर्थात् ४९३ वि० पू० में इन का जन्म हुआ। शाक्य जाति के राजकुमार थे। वैराग्यवश घर से निकले। वनों में फिरे। तपस्याएं कीं। अन्त को ध्यान में लीन होकर

रुष्ट होकर बनों में भाग गए हैं। वस्तुतः वह उन्हीं मोह-ग्रस्तों के मोक्ष की धुन में "बोधी-वृक्ष" की एकान्तमयी छाया ढूंढ रहा था। मुहम्मद[२] 'हरा' की पहाड़ी में 'मक्के' से दूर न था। 'मक्का' उसके मन में बसता था, 'मक्के' को आत्मिक मदीना (नगर) बनाने के लिए उसे आत्मसंयम करना आवश्यक था कर्षण जी मूल जी को भागने से रोकता है कि कहीं बन बालक की मृत्यु न बने। उसे क्या पता था कि अमृत निर्जन

'बोद्धि तत्व' को पाया और बुद्ध हुए। घर वालों को बोद्ध किया। और देश मे बौद्ध धर्म फैलाया।

२—मुहम्मदीमत के प्रवर्तक। इसलाम फैलाने से पूर्व 'हरा' नाम पहाड़ी में ध्यान-निमग्न रहे। इनका जन्म ५१४ वि० में हुआ। और ५८५ वि० में इस देह को छोड़ा।

स्थानों में है, जिसकी उपलब्धि से समस्त जगत् को मृत्यु के भय से छुड़ाया जा सकता है। दयानन्द अपनी आयु के इतने वर्ष किसी व्याघ्र की गुफा में छिपा न था। वह अपनी आत्मा में स्थित उस अन्तरीय ज्योति को वायु के झकोलों से बचा रहा था, जिस से संसार में फिर वेद का दीपक प्रदीप्त होना था।

क्या यह आत्म-संयम केवल ऋषियों तथा नेताओं के लिए नियत है? नहीं! प्रत्येक मनुष्य संसार में नेता है जो नेतृत्व का नाश करता है, वह अपनी दैवीशक्तियों से अनभिज्ञ है। आत्म-हत्यारे ने आत्म-गौरव को नहीं पहिचाना। अरे! तुझे अधिकार है, तू सब को पीछे लगा! हां! ईश्वरीय नियमों को बदलने का प्रयत्न मत कर। बदलेगा तो स्वयं

बदला जायेगा। हमारे पूर्वजों की दूरदर्शी आंख प्रकृति के अथाह समुद्र में डुबकी लगाती और क्षण २ में शिक्षा के अमूल्य मोती बाहर लाती थीं। वेद मानुषीय जीवन को चार भागों में विभक्त कर प्रत्येक मनुष्य को आत्म-विकास का समान अवसर देता है। ब्रह्मचर्य्य की अवस्था आत्म-संयम की अवस्था है। जिस अभिप्राय से दयानन्द वनों में फिरता रहा, मुहम्मद पर्वत की गुफा में गुप्त रहा, बुद्ध ने निरर्थक तपस्याओं के पश्चात् बोद्धि-वृक्ष के नीचे बोद्धि-तत्व पाया, उसी अभिप्राय की सिद्धि प्रत्येक आर्य्य को अपनी आयु के प्रथम २५ वर्षों में करनी है। फिर वह गृहस्थ में आए और जगत्परीक्षा में एक पूर्णतया सज्जित विद्यार्थी की भान्ति

प्रविष्ट हो। शोक! मां बाप ने तुझे बन का विद्यार्थी न बनाया। क्या अब तुझ ऐसों के लिए आशा नहीं है? है! अवश्य है! तू अपने प्रत्येक दिन के पूर्व-भाग को ब्रह्मचर्य्य के सदृश बना। अर्थात् नगर से दूर हो किसी बनमें अथवा पर्वत पर चला जाया कर। यदि तू प्रतिदिन खोए हुए बलको फिर अपनी ओर बुलाता रहा, तो तेरे लिये फिर से बलयुक्त हो जाना कुछ कठिन बात नहीं। गृहस्थ के धंधों में दिन के मध्य का भाग व्यतीत कर। सायंकाल होते ही फिर घर से पृथक् हो जा, और प्राकृतिक दृश्यों की सैर तथा उस महती शक्ति का स्मरण कर, जिसे अपने अन्दर रखता हुआ भी तू उस के संसर्ग से वञ्चित है। यह गृहस्थ में ही संन्यास अथवा वान-प्रस्थ होगा। भाई!

क्या पता है, तू कितना काल जिये। तुझे वनस्थ होने का अवसर मिले वा न, जीवन-लता के चार फल अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तू इकट्ठे ही लाभ कर। एक ही आश्रम में चारों आश्रमों का आनन्द लूट और सफल-मनोरथ हो।

## ५—अपूर्व डायरी।

अब तुझे ज्ञान हो गया कि तुझे किस ओर प्रेरित करते रहे? तुझे पहिला पाठ यह पढ़ाया कि अपने कृत्यों पर ध्यान दे। तुझे चिन्ता हुई कि भूतल पर मेरे कर्तव्य क्या हैं? ऋषियों ने इस की तालिका बनादी है, जो एक अपूर्व क्रम के साथ सन्ध्या मन्त्रों में समाविष्ट है।

सवितृ-मन्त्र के साथ 'सविता देव ओम्' का आश्रय ले, जो तेरी उन्नति

का अचूक उपाय है और 'शन्नोदेवीः' इत्यादि मन्त्र द्वारा चित्त को सब प्रकार के विकारों से रिक्त कर। इन्द्रिय-स्पर्श से शरीर की वृद्धि सम्बन्धी, मार्जन मन्त्रों से मन तथा इन्द्रियों की शुद्धि सम्बन्धी कर्तव्य जान। प्राणायाम तुझे शारीरिक बल तथा मानसिक नैरोग्य देगा। अघमर्षण से पाप का नाश कर और मनसापरिक्रमा से गृहस्थ तथा समाज, नहीं! नहीं!! सारे संसार को प्रेमपात्र जानकर निर्वैर तथा द्वेषशून्य होजा। आगे उपस्थान है, अर्थात् परमात्मा के निकट बैठना। यदि भावना सामर्थ्य-युक्त है, और दिव्य-चक्षु खोल सकता है, तो उस अदर्शनीय का दर्शन कर कृतकृत्य हो। कैसी अपूर्व सीढ़ी है? शरीर से मन, मन से आत्मा, आत्मा से

परमात्मा तक पहुंचा दिया। और तुझे चाहिए ही क्या? संसार भर की प्रार्थनाएं पढ़। और कहीं यह बात नहीं।

मेरे प्रिय! जीवन के सब अङ्गों में अपना कर्तव्य समझ चुका। परमात्मा को साक्षी मान इन कर्तव्यों का चिन्तन किया। यह दूसरे शब्दों में तेरे व्रत हैं। दिन भर इनका पालन कीजिया! परमात्मा से ठट्ठा न करना। उसको बीच में लाकर उपहास करने का प्रयत्न मतकर। बड़े से बड़े न्यायाधीश के समक्ष तूने अपना प्रतिज्ञा-पत्र [सन्ध्या में आये व्रत] रजिस्टरी कराया। उस को तोड़ेगा तो अतीव दण्ड का भागी होगा। उपासकों की भाषामें प्रार्थना और प्रतिज्ञा पर्य्यायवाची हैं। तूने शुद्ध हृदय से प्रण किया। जगज्जननी ने तुझे आशीर्वाद दिया।

शिवा[1] जी की माता की आशीष निरर्थक नहीं हुई। राजपूत जननियां अपने आशीर्वाद का फल अपने वीर बच्चों के बलिदान अथवा विकट वीरता के रूप में देख कृतकृत्य हुईं। जापानियों ने अपने दूध पिलाने वालियों के शुभ शब्दों का मान रूसियों को विनष्ट करके रक्खा। तुम जगज्जननी के आशीर्वाद का क्या सत्कार करते हो? तुम्हारा दिन का व्यवहार दर्शायेगा। प्रातःकाल की सन्ध्या

१ मराठा राज्य का संस्थापक। इसका जन्म १४७७ वि० में हुआ। नीति और धीरता में अद्वितीय था। जागीरदार के लड़के से राजा हुआ। मृतप्राय आर्य्य जाति मे फिर से प्राण डाले। क्षत्रियों के रुधिर को गरमाया और छीने हुए राज्य को आत्ममात किया। राज्य-विधि चातुर्य-पूर्ण थी। औरंगजेब तक ने इस वीर का लोहा माना।

तुम्हारा ब्रह्मचर्य्य है, उस में यह प्रतिज्ञाएं करना। सायंकाल की सन्ध्या संन्यास है, उस में इन प्रतिज्ञाओं की आलोचना करना कि पूरी हुईं या नहीं? उक्त दोनों आश्रम "ओ३म्" में विचरने के हैं। और संन्ध्या का अभिप्राय भी यही हैं। जभी तो गृहस्थ में ब्रह्मचर्य्य और संन्यास का स्वाद चखाया।

मन्दिरों के पुजारियों का जनता के हृदयों पर क्या प्रभाव है। विचार-शील उन्हें दुराचारी समझते हैं। कारण यह कि उन का समय तो प्रायः ईश्वर-स्मरण में जाता है, फिर भी वह आचरण में नीच रहते हैं! भाई! वह केवल जिह्वा से राम नाम रटते हैं। मन पर उसका लेशमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ता। उनकी-जिह्वा ग्रामोफ़ोन की तरह चलती रहती

है, परन्तु मन में कुविचार ही डेरा डाले रहते हैं। जप और है, जीवन और। तुम सन्ध्या का सम्बन्ध जीवन से न तोड़ना। आचार-व्यवहार में सदा सन्ध्या-मन्त्रों की झलक विद्यमान रहे। यह क्या कि विध तो मिलाओ, पर व्यापार न करो।

जिन प्रार्थनाओं में जीव अपने आप को पतित तथा पापी कहे और परमात्मा को पतित-पावन, और नित्य प्रति एक ही से शब्दों में गिड़गिड़ा कर कहा करे, 'हे भगवन्! तू मुझे उठा' पर स्वयम् उठने में यत्न न करे, वह प्रार्थनाएं निरर्थक हैं। यदि आज भी मैं उतना ही पापी हूं जितना कल था, तो ईश्वर ने मेरी प्रार्थना नहीं सुनी। और मेरा यह भ्रम कि वह पतितोद्धारक है, निर्मूल

सा है। रोज़ ऐसे शब्द दुहराने से उपासक और उपास्य में एक स्थायी सम्बन्ध स्थिर हो जाता है। उपासक सदैव पापी रहेगा और परमात्मा को भावी उद्धारक समझ मोद मनाएगा। वह समय कभी न आएगा, जब वह भावी उद्धारकर्ता वर्तमान उद्धारकर्ता बने। यह ईश्वर पर लांछन है। सन्ध्या ऐसी आत्म-घातक प्रार्थनाओं से रहित है। पाप का स्मरण पश्चात्ताप के लिये कर। अपने आप को यों ही पापी कहना पुण्य नहीं। तू जो प्रार्थनाएं सन्ध्या द्वारा अथवा अन्य शब्दों में किया करता है, उन्हें सार्थक जान और सार्थक बना। और प्रतिदिन पूर्व की अपेक्षा कुछ उन्नति करता जा। तभी तू उन विचारों और चेष्टाओं से बचेगा, जिन से प्रसिद्ध

महन्तों का नाम कलंकित है । फ्रैंक्लिन ने अपने जीवन को डायरी से सुधारा था। उस की डायरी से तेरी सन्ध्या अत्यन्त श्रेष्ठ है।

## ६. जी नहीं मानता ?

पिछले शीर्षकों में हम ने उपासना की आवश्यकता पर बल दिया था। हम कल्पना करते हैं कि अब पाठक प्रातः सायं ईश्वर के समीप बैठने, अपने आचरण पर ध्यान रखने, तथा अपनी त्रुटियों को मिटाने के लिये बल की याचना करने पर कटि-बद्ध हैं। हम ने ऊपर बताया कि इन सब मनोरथों की सिद्धि सम्यक्कृया सन्ध्या से ही हो सकती है। इस पर उपासक को कुछ शंकाएं हैं। लो! हम उन

को भी निवारण कर दें। मुमुक्षु के प्रश्न जिज्ञासुओं के से प्रश्न हैं। वह यह नहीं कि थोड़ा सा संशय होने पर धर्म्म की मर्य्यादा छोड़ दे। यदि उसकी बातों का उत्तर आज न भी दें, तो भी वह सन्ध्या करता रहेगा, और उस अवसर की धैर्य से प्रतीक्षा करेगा, जब उस के मन से कंटक निकाल दिया जाय ताकि जिस शान्ति की उपलब्धि के लिये उस ने आसन लगाया है, उसे वह पूर्णतया प्राप्त हो। यही सम्मति हम प्रत्येक आर्य्य भाई को देंगे, कि वह थोड़ा सा सन्देह होने पर नैत्यिक कर्म को छोड़ें नहीं। सम्भव है, उन्हीं की बुद्धि में भ्रम हो।

---

# पहला संशय ।

सन्ध्या संस्कृत में क्यों करूं ? मुझे उस के अर्थ नहीं आते । आर्य-भाषा अपनी जातीय तथा राष्ट्र-भाषा है । मैं उसी में प्रभु से बात करूंगा । ठीक ! उपासना-मण्डल के पक्षी ! तू पार्थिव भाषाओं के आकाश से ऊंचा उड़ । अजात के आगे जाति का बखेड़ा न डाल । इस ममता को छोड़ । तू ईश्वर की वाणी में ईश्वर से वार्तालाप कर । जगज्जननी की गोद में बैठ कर तू वही संथा सुना, जो तुझे सृष्टि की आदि में सिखाई गई । वेदों की भाषा किसी जाति अथवा देश विशेष की भाषा नहीं । यदि है तो मनुष्य-मात्र की । नहीं तो किसी की नहीं। संसार की तो गुप्त २ भाषाओं

से भी तू परिचय पाने का यत्न करना है, और पुरानी तथा नई पुस्तकों, शिलाओं लिपियों, तथा स्मारकों की खोज से पुराने मनुष्यों के मनो-विकास का पता लगाता है, और उस सकल वाणी के स्रोत, ज्ञान के भण्डार, वेद की ओर जाता ही नहीं, जिस में जातियों के साझे पूर्वज परमेश्वर ने अपना अनादि विचार प्रगट किया। वेद के अर्थ सरल हैं। आदिम ऋषि बिना कुछ और जाने इस मन्त्रों का अभिप्राय जान सके। तुझे भी इन में बहुत परिश्रम न होगा।

(२) सन्तोष नहीं हुआ? जो मन में है, कह! निःशङ्क होकर कह! जी नहीं मानता। आज भी यही सन्ध्या! बड़े होकर भी यही सन्ध्या! बालक की भी यही सन्ध्या, वृद्ध की भी यही, पापी की भी यही, पुण्यात्मा की भी यही? न

आयु का भेद, न मनो-विकास का भेद ?
प्राणों से अधिक प्रिय ! मानस विद्या के पूर्णवेत्ता यहां सांसारिक मनो-विद्या ( Psychology ) लागू नहीं। यह मार्ग कुछ विचित्र है। जब तू इस में प्रविष्ट हुआ और कुछ उन्नति की तो सब रहस्य तुझ पर खुल जायेंगे। यहां जो 'अ' है वही ॐ है। जो बच्चे के खेल के खिलौने हैं, वही युवक के उत्साह एवं पुरुषार्थ की सामग्री है। जवान का प्रवृत्ति मार्ग वही, बुड्ढे का निवृत्ति मार्ग वही। योगी के योग का साधन वही, रोगी के रोग का निवारण वही। पापी पाप का नाश करे, धर्मात्मा धर्म्म का प्रकाश पाए। यह मन्त्र केवल सिद्धान्त है। प्रयोग अवस्था के अनुसार होगा।

हम ने लाख यत्न किया, इन मन्त्रों का अनुवाद आर्य्य भाषा, उर्दू तथा इंग्-

लिश में कर दें, परन्तु सफलता न हुई पर न हुई। कारण यह कि सब भाषाओं में किसी एक मनुष्य के किसी एक क्षण के विचार एक से शब्दों में आ सकते हैं। सब के लिये एक बात बन जानी सम्भव नहीं। वेद का चमत्कार निराला है। यह वह दर्पण है, जिस में प्रत्येक मुख अपना प्रतिबिम्ब देख सकता है। तू भी इस उज्वल शीशे में अपनी उज्ववल आकृति देख !

अवस्थाएं भिन्न सही, पर आदर्श एक है। वेद के मन्त्र प्रत्येक के लिये एक सा सङ्केत करते हैं। जिसने समझा, तर गया। न जाना, रह गया। अन्य मतों पर जिह्वा न खुलवाओ। सब अपने २ समय की झलक रखते हैं, और वेद की झलक सब समयों में है।

सब पर अपने २ देश की मोहर है; और वेद की मोहर सब देशों पर है। सब अपने २ प्रवर्तक की परछांई लिए हैं। वेद बिना परछांई वाले की परछांई है। बालक दूर के दृश्य को न देखे, उसे पता न सही कि उस की यात्रा का अन्त कहां होगा। पर क्या उसे सड़क भी वह न दिखाएं, जिस पर उस से बड़े उसके अग्रगामी हैं।

भाई! कह दिया। ब्रह्म-यज्ञ का उद्देश्य हृदय-क्षेत्र का फैलाना है। तू क्यों उसे संकुचित करता है। शूद्र है? आ। तुझे ब्राह्मण के साथ बिठाऊं। वैश्य है? क्षत्रियों की पंक्ति में बैठ।

बुड्ढे को लज्जा है, मैं बालक के पीछे बिठाया जाऊंगा। पिता को चिन्ता है मुझ से पुत्र उच्च-स्थान प्राप्त करेगा।

पुरुष भयभीत हैं, कहीं स्त्रियां ही हम से अधिक अधिकार न लें। सांसारिक लोग सांसारिक शृंखलाओं में जकड़े खड़े हैं! कभी मुक्त हुए नहीं, मुक्ति चाहते नहीं। समस्त भेदों के नाशक, असमानों में समान, सर्व-व्यापक परमात्मा के दरबार में ऊंच नीच कैसी?

बालभानु की सुन्दरता में नहाई हुई किरणें किस आंख को प्रकाश के साथ आनन्द नहीं देतीं? तारों भरे आकाश की टिमटिमाती ज्योति न पुरुष से पर्दा करती है, न स्त्री से। वर्षा ऋतु के पपीहे की स्वर न शूद्र के कान में सिक्का पिघलवाती है न ब्राह्मण के। यह और बात है कि द्रष्टा की दृष्टि तथा श्रोता की श्रुति उसके अनुभव में भेद करदे। पर दृश्य तथा श्रुत तो एक रहेगा ही।

ऐसे ही सन्ध्या के मन्त्र एक, उपासकों की अवस्था भिन्न २। अपने २ बोध के अनुसार चिन्तन करें और लाभ उठावें। स्वच्छ जलवायु रोगी के रोग को मिटाता है तो स्वस्थ के स्वास्थ्य को बढ़ाता है। फिर सन्ध्या में पापी और पुण्यात्मा का भेद क्या ?

परमात्मा के अमृत पुत्रो ! सदैव बाह्य भेदोंकी गोदड़ियोंमें गुप्त रहने वालो ! अपने स्वरूप को पहचानो। उज्वल सूर्य्य को कालिमामय न करो। बाह्य ओढ़नों को उतारो। नङ्ग धड़ंगा जीव लाडेश्वरी माता की गोद में लाड करने चला है ॥

शूद्र भाई ! तू भी ब्राह्मण के अमृत पिता का अमृत पुत्र है। देवि ! हमारी उपास्य देवी ही है। सत्तरे बहत्तर ! परमात्मा की आयु का पार ही नहीं। वह अतिवृद्ध है। बालक ! तू नवजात है तो

परमात्मा की शक्ति भी नित्य नई है। फिर क्या ? आजाओ! एक बार तो भेद-रहित अभेद्य के आगे इन भयंकर भेदों को छिन्न भिन्न कर डाले। और प्रभु के प्रेम-मन्दिर में अभेद होजाएं॥

## ७—मन लगाने की विधि।

मन की चञ्चलता सम्यक् ध्यान में बाधक है। योगियों का सबसे बड़ा शत्रु मन कहा जाता है। किसी ने मन को मूर्ख कह कर किसी ने शठ बताकर उस के सुधारने की आवश्यकता बताई है। इसमें सन्देह नहीं कि बिगड़ा हुआ मन मनुष्य को ठौर ठिकाना छुड़वा देता है। परन्तु सध जाए तो ऐसा योग का उपयोगी साधन कोई नहीं।

वस्तुतः मन की चञ्चलता इतनी निन्द्य नहीं जितनी बताई जाती है। चञ्चल मन प्रतिभा का भण्डार है।

जितनी तीव्र मन की गति होगी, उतना अधिक तत्वों का ग्रहण अन्तःकरण में होगा। कई मनुष्य अनेक स्वरों तथा भाषाओं को एक साथ सुनकर उनको समझ ही नहीं जाते किन्तु उनके गुण दोषों की परीक्षा भी कर सकते हैं। उनका मन क्षण मात्र में कई विषयों में दौड़ धूप कर लेता है। एक विषय के कई अवयव होते हैं। जिनके मन की गति वेगवती है, वह बहुत शीघ्र एक अवयव से दूसरे और दूसरे से तीसरे का घेरा डाल लेते हैं। मन्द गति वाले घण्टों एक ही अवयव पर नष्ट कर देते हैं।

समाहित और स्तब्ध मन में भेद है। समाहित वह मन है जिस की गति को रोका नहीं गया, किन्तु नियम में लाया गया है। स्तब्ध वह है जिस में गति ही नहीं। ऐसा मूढ़ों का मन है कि जिन्हें

कुछ आना नहीं।

इस में कुछ लाभ नहीं कि मन केवल एक विषय पर ही घंटों अटका रहे। लाभ इसमें है कि उस विषय के प्रत्येक अवयव में उतनी गहरी डुबकी मारे जितनी उसके सम्यक् ज्ञान के लिए चाहिए। अर्थात् उस में गति तो रहे परन्तु उस की वृत्ति गहराई की ओर हो। जब उस अवयव से निवृत्त हो. तत्काल ही दूसरे अवयव में चला जाए। इसी से उस की चाल सूक्ष्म होती है, और सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय की ओर प्रवृत्ति होकर गूढ़ तत्वों की उपलब्धि का सामर्थ्य आता है।

मूर्तिपूजन में यही दोष है कि उस में गहराई नहीं। पत्थर अथवा पीतल पर ठहराने से मन स्तब्ध ही होगा। उसे जड़ पदार्थ का ही विचार रहेगा क्योंकि उस की वृत्ति स्थूल है। इससे तो मन चंचल रहे, अच्छा है।

साकारोपासना निराकारोपासना की भूमिका कही जाती है, कि जब मन स्थूल पर रुकने लगा, इसे शनैः २ सूक्ष्म ध्यान का अभ्यास करायेंगे। भला यह क्योंकर होगा? पत्थर के निरन्तर ध्यान से बुद्धि पाषाणवत् स्तब्ध हो जाती है। फिर वह इस योग्य ही नहीं रहती कि उसे सूक्ष्म विचारों में डाला जाए।

गणित ध्यान का विषय है। इस के लिए अध्यापक पहिले मूर्ति-पूजन का अभ्यास नहीं कराता कि पहिले बालक का चित्त एकाग्र हो ले, फिर १, २ सिखाएंगे। प्रथम ही गणित में डाल देता है। छात्रों की सुविधा के लिए कभी प्राकृतिक प्रयोगों से, कभी रेखाओं और चित्रों से सहायता लेता है। वस्तु और चित्र का अनुपात काल्पनिक होता

है परन्तु आकार-साम्य वास्तविक है॥

योगी निराकार के गुणों का चिन्तन साकार प्रकृति की सहायता से करता है। वह सृष्ट जगत् में सृष्टिकर्त्ता के गुणों को पाता और आनन्द में निमग्न होता है। इस एक ही विषय में मन की सारी चञ्चलता समाप्त होजाए, फिर भी उस की समाधि वैसी की वैसी बनी रहेगी। अघमर्षण मन्त्रों में इसी विधि से परमात्मा का पता लगाया है। इस में मूर्ति को सामने रखकर क्या विचारें? यही कि इस ने सृष्टि नहीं की? यह संसार की नियन्त्री नहीं। यदि मूर्ति अपनी भी नियन्त्री होती, तो भी 'नेति' कहकर परमात्मा का ध्यान कर लेते॥

सर्व-शक्ति के ध्यान में बाहुबल, विद्या-बल, बुद्धि-बल, समाज-बल, आत्मिक बल,

इत्यादि कई बलों का विचार सहसा मन में आएगा। अनेक पहलवानों, असंख्य नीतिज्ञों, अगण्य विद्वानों और समाज समूहों का चित्र आंखों के आगे फिरेगा। इन सब का प्रत्यक्ष स्वरूप आंखें न देख पाएंगी, परन्तु बुद्धि समझ लेगी। फिर जी में आएगा "नेति" इतना नहीं॥

ऐसे ही परमात्मा के और गुणों पर मन को अत्यन्त वेग से काम लेना होगा। अचिन्त्य का एक २ गुण अथाह है। वेद ने उसे "सदावृधः" कहा है। अर्थात् जितना उसे समझो उतना आगे बढ़ता जाता है॥

साकारका पूजन ऐसे ध्यान में बाधक है। मूर्ति मन की गति को स्तब्ध करती है, और हमें आवश्यता उसे नियमबद्ध करने की है॥

समाधि में चित्त एक विषय का ही

हो रहता है। दूसरे पदार्थों में नहीं जाता, यद्यपि उपस्थित विषय में उसका वेग दूर की खोज निकालता है सही। वेद में मन के लिए यह प्रार्थना नहीं की, कि निःसंकल्प हो, किन्तु उसका शिव-संकल्प होना मांगा है। एक विषय के निरन्तर ध्यान में उस के अवयवों के बहुत्व के होते भी उनका परस्पर सम्बन्ध बिगड़ने नहीं पाता। यही आनन्द का कारण है।

मन को समाहित करने के लिए उस को ऐसा विषय दो जिस में इस को दौड़ धूप का खुला स्थान हो। परमात्मा के प्रत्येक गुण में ऐसी विशालता की पराकाष्ठा है। अनन्त के किसी गुण का अन्त नहीं। यदि सान्त पदार्थ पर ध्यान जमाया, तो अनन्त की ओर जाने की

अपेक्षा उस से विमुख होने का अधिक यत्न किया।

सन्ध्या के मन्त्रों में कहीं सृष्टि के वैचित्र्य को देखकर, कहीं इन्द्रियों के लिये बल मांग कर, कहीं पवित्रता के प्रार्थी होकर, कहीं छहों दिशाओं का मानसिक चक्र लगाकर, कहीं कल्याण, कहीं अभय की याचना से परमात्मा के स्वरूप को पहचानना चाहा है।

मन्त्रों के अर्थ आने से पूर्व इस रहस्य से वञ्चित रहोगे। निरर्थक शंख जब तक बजे बजाओ। जब अर्थ आगये, तब मन का समाहित होना न होना तुम्हारे यत्न पर निर्भर है। मुख मन्त्रों के उच्चारण से शुद्ध होगा। मन लोक लोकान्तरों की सुधि लेगा। इस चञ्चलता से घबराओ मत। इस के आगे धातु का लिंग

खड़ा किया तो उसे और चञ्चल बना लोगे। यह मन्त्रों से विमुख होने का एक और साधन होगा। मंत्र मननवाची धातु से है। सन्ध्या में मन की एकाग्रता यह है कि मंत्रार्थ का ध्यान रहे; सो मूर्ति पर तो लिखा नहीं।

इस की सुगम और अचूक विधि यह है कि बलपूर्वक अपनी वृत्ति उन भावों पर रखो जो मन्त्रों के शब्द-जाल में गुँथी हुई हैं। जिस मन्त्र के अर्थ से मन भागे, उसका उच्चारण एक बार और करो। जब तक प्रत्येक मंत्र का अर्थ एक एक बार हृदय में से न गुज़र जाए तब तक उस मन्त्र को न छोड़ो। कुछ काल के अभ्यास से सन्ध्या तुम्हारे स्वभाव का अङ्ग बन जाएगी। और ज्योंही किसी मंत्र पर मन लगाओगे, उस का अर्थ

स्फुरित होगा।

## ८—मांगने योग्य वस्तु।

मांगने की विधि वेद ने सिखाई है। संसार की कोई कमनीय वस्तु नहीं जिस के लिये वेद में याचना न की हो। शरीर की पुष्टि, धन धान्य, गौएं, घोड़े, पशु, अन्तःकरण की शुद्धि, पुत्र, प्रजा, शत्रुओं पर विजय, कृषि, व्यापार, ब्रह्म-तेज, सब के लिये परम दयालु परमात्मा के आगे हाथ पसारे हैं।

हम ऊपर बता चुके हैं कि उपासकों की परिभाषा में प्रार्थना और प्रतिज्ञा पर्याय है। हाथ पसारे हैं तो हाथ हिलाने भी स्वयं होंगे।

वेद का वैचित्र्य यह है कि इस म

जीवन के संपूर्ण अङ्गों पर एक साथ ही दृष्टि डाली है। जहां ब्रह्मतेज मांगा है, वहां भौतिक वैभव को भी हाथ से नहीं दिया। वेद में न अधूरे आदर्श है, न अधूरे प्रयत्नों पर बल दिया है। ब्राह्मण ग्रन्थ की वह श्रुति जो हम हवन करते समय बार २ दोहराते हैं कितनी स्पष्ट है, जिस में प्रजा, पशु, ब्रह्मवर्चस्, अन्न जो आद्य हो अर्थात् खाने योग्य, इन सब पदार्थों के लिये इकट्ठी प्रार्थना की है॥

यहां समृद्धि का अर्थ रुपये पैसे नहीं किया, किन्तु उन वस्तुओं को एक २ करके गिनाया है जो वास्तविक सम्पत्ति हैं। आधुनिक भारत पिछली कई शताब्दियों की अपेक्षा रुपया अधिक रखता है, पर फिर भी दुर्भिक्ष इतना है कि

पहिले कभी देखने सुनने में नहीं आया। अर्थ शास्त्र रुपये को धन नहीं मानता, किन्तु इसकी क्रय-शक्ति को धन मानता है। इस रहस्य को हमारे पूर्वजों ने भली भान्ति जाना था।

आधुनिक वैश्य-जाति को अर्थशास्त्र की इस शिक्षा पर विशेष ध्यान देना चाहिये। सिक्कों के पृथ्वी में दबा रखने से हम समृद्धिशाली न होंगे, उनके प्रयोग से अर्थात् उस सामग्री के हस्तगत करने और अपनी तथा जाति की देह में खपाने से ही आढ्य बनेंगे जो तुष्टि पुष्टि देने वाली है।

गत वर्ष के भयंकर युद्ध ने जातियों के कान खोले हैं। बरसते हुए गोलों की गरज ने यह सचाई का नाद शान्त अशान्त दोनों प्रकार के हृदयों में पहुंचाया

है कि आगे को जाति का धन जाति की व्यक्तियों के शरीर तथा मस्तिष्क होंगे।

आर्य बालक गायत्री मन्त्र में बुद्धि-बल की प्रार्थना करता है। यह मन्त्र इस जाति का मूल मन्त्र है। इस रहस्य को जितना हम ने पहचाना है, किसी ने नहीं पहचाना, कि बुद्धि मूल धन है।

शारीरिक बल के लिये सदैव इन्द्रिय-स्पर्श किया जाता है। एक २ अंग को टटोल २ कर उसकी पुष्टि की परख की जाती है। जाति-बल, बुद्धि-बल, समाज-बल, ब्राह्म-बल, सब के लिए बल-स्वरूप का किवाड़ खटखटाया जाता है।

भारत अतियों का देश है। दार्शनिक जब एक वस्तु की सिद्धि पर बल देता है,तो उसे दूसरी सब वस्तुओंका मानो विस्मरण सा होजाता है। यह सचाई स्वामी दयानन्द

ने दिखाई है कि विविध दर्शन एक दूसरे की पूर्ति करते हैं। जैसे आज कल का वैद्य शरीर का निदान तथा औषधियों के गुणों का ज्ञान रखता है और उसे नक्षत्र-विद्या का पता नहीं, तो भी वह नक्षत्रों के होने का निषेध नहीं करता, ऐसे ही सांख्य प्रकृति को मुख्य विषय मानता है और ईश्वर का विशेष वर्णन नहीं करता। एवं वेदान्त में ब्रह्मज्ञान का मुख्यरूपेण विवेचन किया है, और दूसरे पदार्थों पर गौण दृष्टि डाली है।

नवीन वेदान्त इस मुख्य और गौण के भेद को न जान कर केवल ब्रह्म के अस्तित्व पर अवलंबित हुआ। अकेले ब्रह्म की चाह करते २ प्रकृति और जीव के महत्व को ही भुला बैठे। संसार को स्वप्न क्या कहा, अपने जीवन से

जागृति की झलक ही मिटा दी।

ऐसे समय में रट चली कि संसार असार है। इसकी इच्छा करना मूर्खता है. परमात्मा से परमात्मा मांगो। परमात्मा से भिन्न जब कुछ था ही नहीं तो फिर उसे मांगते कैसे?

सच पूछो तो नवीन वेदान्त आलस्य का बहाना था। भारत को पुरुषार्थ-हीन इसी सिद्धान्त ने किया।

जो अनेकभाववादी हैं वह इस प्रार्थना का कुछ और अर्थ लेते हैं। उनके मन में वाञ्छनीय पदार्थों में उत्तम परमात्मा है। उस को पाकर किसी और पदार्थ की चाह नहीं रहती। ऐसे लोगों ने परमात्मा को सांसारिक पदार्थों की भांति अधिकार में आने वाली वस्तु माना है और प्रकृति और परमात्मा को

परस्पर शत्रु समझकर एक की प्रीति में दूसरे का त्याग आवश्यक जाना है।

वस्तुतः यह भूल है। परमात्मा प्रकृति से परमार्थतया पृथक् हैं परन्तु नियन्ता नियमित, तथा व्यापक-व्याप्य भाव से इन दो में अटूट सम्बन्ध है। शक्ति का क्षेत्र न हो तो शक्ति कैसी? परमेश्वर का परम ऐश्वर्य प्रकृति के प्रभुत्व ही से है।

परमात्मा प्रकृति के बिना मिलें कैसे? वेद परमात्मा को राजा कहता है। चक्रवर्ती राज्य मांगना परमात्मा के एक बड़े गुण की याचना करना है। वैभव की सिद्धि के लिये प्रयत्न करना विभु की वास्तविक प्राप्ति का साधन करना है।

परमात्मा ज्ञानी हैं, इस लिए ज्ञान चाहो। परमात्मा बली हैं, इसलिये बल

चाहो । परमात्मा अधिपतियों के अधिपति हैं। तुम्हारी उपासना यह है कि तुमभी अपने सामर्थ्यानुसार ही आधिपत्य मांगो और प्राप्त करो। परमात्माका व्यापार तथा कला-कौशल समस्त संसार की कलाओं से प्रमाणित है। उसी की कृषि से सम्पूर्ण कृषि है । विना किंकरों के वह किंकरों की भी सेवा करता है। परमात्मा कर्म्म करते हैं। तुम कर्म्म करो, तव परमात्मा के प्रिय होगे।

सांसारिक बड़ाई हेय नहीं, उपादेय है। जितने बड़े होगे उतने परमात्मा के निकट पहुंचोगे।

प्रवृत्ति में निवृत्ति की झलक झलकानी चाहिये। प्राकृतिक पदार्थों पर प्रभुत्व पाकर उनके दास न बन जाओ । धन उत्तम वस्तु है यदि हम उसके स्वामी

हों । वह धार्म्मिक नहीं जो धनी नहीं । जो आवश्यकता भर कमा नहीं सकता, उसको जीवन का अधिकार नहीं । अपने पेट से बचता है, दूसरों का पेट भरो । रुपया कमाने में बस न करो ।

धन हेय वहां होता है, जहां धर्म्म को त्याग दिया जाय । पाप पुण्य दोनों का सहायक धन है । दोष हमारी वृत्ति तथा उपयोग का है । पाप के डर से धन को छोड़ना भीरुता है। दरिद्रता और अधिक पाप कराती है । वीरों की भान्ति जीवन को बलमय बनाओ ।

आज के भारत को धन से विमुख करना उसे मृत्यु का ग्रास बनाना है। भूख को भ्रान्ति कहने से भूखे की तृप्ति नहीं होगी । परमात्मा से परमात्मा मंगवाना है तो पहेलियों में न मंगवाओ । स्पष्ट कहो,

धन पाना परमात्मा पाना है। बल पाना परमात्मा पाना है। धर्म्म पाना परमात्मा पाना है। इन पदार्थों का कुप्रयोग घर आए परमात्मा का अनादर करना है।

---

## ६—बहुरूपी सन्ध्या।

यात्री घर से चला। ग्राम से ४ मील की दूरी पर स्टेशन था। रास्ते में हरे भरे खेत आये। पास एक राजवाहा था। पथिक थक गया था। उस ने चाहा, दो घूंट पानी पीलूं। वाहे के निकट गया, तो क्या देखता है कि एक महाशय आंखें मूंदे, पलत्थी लगाए, गर्दन को कील की तरह सीधा किये, विचार में मस्त हैं, मानो कोई महात्मा योग-साधन करते हैं। पथिक ने चाहा, एक बार माथा टेक दूं, पर न भगवां वेष था और न राख भ-

भूलि ही भली थी। इसलिए रुक गया। फिर भी मन ही मन संशय रहा।

पानी पिया। स्टेशन पर आया। गाड़ी के आने में देर थी। वह यात्रियों का दृश्य देखने लगा। खेत वाला महात्मा विस्मृत सा हो गया। स्टेशन के चौंतरे पर रेल की पटरी के पास ही एक जेन्टल मैन कोट पतलून डाटे, छड़ी घुमाते, बूट के शब्द से ईंटों पर कड़कड़ करते चल रहे हैं। साथ २ कुछ बुड़बुड़ाते भी हैं। विचार आया 'जपजी' होगा। समीप गया तो वह 'शब्द' न थे। 'ओ३म्' से आरम्भ होकर कुछ वाक्य कहे जाते थे। यही "ओम्" शब्द खेत वाले महात्मा भी बोल रहे थे। सो फिर उनका स्मरण आया। पूछने की उत्कण्ठा हुई, पर साहस न पड़ा।

गाड़ी में बैठे तो किसी बाबू साहब ने बूट खोला और खाना खाने से पूर्व उसी स्थिति में बैठ गया जिस में खेत वाले महात्मा बैठे थे। कुछ देर अन्तर्ध्यान रहकर उक्त महानुभाव ने खाना खाया।

दूसरे दिन नगर में उतरे। विचित्र समारोह था। इधर झरिडयां, उधर झरिडयां। गाड़ियों पर भजनीक मनोहर स्वरों से वायु मरडल को गुंजायमान कर रहे थे। भीड़ इतनी थी कि ठैरने को ठिकाना न था। सायं समय था। भजनीकों ने मधुर वाणी से वही 'ओ३म्' की रट छेड़ी, और वही वाक्य गरज २ कर गाने लगे, जो स्टेशन के जैएटलमैन बुड़बुड़ा रहे थे।

दूसरे दिन समाज का वार्षिकोत्सव था। भजन तथा उपदेश होते रहे। वही

समय आया और 'ओम्' की रट छिड़ी। यहां सब इकट्ठे बोल रहे थे।

हमारे पथिक को ज्ञात हो चुका था कि यह सन्ध्या थी। इसका अभिप्राय भी जान चुका था कि परमात्मा का स्मरण है। शंका थी तो यह कि इसके इतने विविध रूप क्यों हैं? क्या इस क्रिया के कोई नियम नहीं हैं? स्थान-विषयक, समय-विषयक, आसन-विषयक, स्वर-विषयक?

प्रिय पथिक! आ तुझे सन्ध्याके नियम बताऊं। सम्यक्तया महात्मा ही संध्या कर रहे थे दूसरे सब उस आदर्श को पहुंचने के अधूरे यत्न हैं। विविध मनुष्यों की विविध क्रियाएं उनकी भिन्न २ अवस्थाओं की द्योतक हैं। इस पर उदाहरण ले।

कभी स्कूल गया है ? और ध्यान-पूर्वक वहां की क्रिया देखी है ? छोटी श्रेणियां कोलाहल करती हैं । अनजान अध्यापक डण्डे से कोलाहल बन्द करता है । वह पढ़ते नहीं । चुप करा दो, उन्हें याद ही कुछ न होगा । बड़ी श्रेणियों में जाओ । वहां ऊंचा बोलना पाप है ! छोटे मिल २ कर पढ़ते हैं, बड़े एकान्त चाहते हैं । इस विचित्र क्रम को समझा ? बच्चे का मन समाहित नहीं । उसकी वृत्ति बाहर की ओर है । इसका अवरोध उसके शक्ति-विकास की मृत्यु है । ज्यों २ आयु बढ़ी, सोचने का अभ्यास होता गया । अब चित्त का मुख अन्दर को हो गया । इसी लिए तो हठ है कि रहने को अकेला कमरा चाहिये । परीक्षा की तैयारी स्कूल के आश्रम में नहीं हो

सकती, बाग को निकल जाते हैं और वहां एकाकी बैठ कर पुस्तक से लव लगाते हैं, यहां तक कि अपना शब्द भी अरोचक सा हो जाता है।

यही नियम उपासना का है। साधारण जन बालक हैं। उनका मनो-विकास नहीं हुआ। वह यदि एकान्त में संध्या करेंगे, तो संकल्प-विकल्प से व्याकुल होंगे। यह सन्ध्या-मन्दिर बनाएं और उच्च स्वर से मन्त्रों का उच्चारण करें। पर यह आदर्श दृष्टि-गोचर रहे कि प्रकृति से मन को हटा कर उसे हृदय में जहां परमात्मा और आत्मा का समागम है; स्थित कर सच्चा प्रयाग तीर्थ बनाना है।

समाजों ने मन्दिर बनाए तो हैं, पर बहुत कम। एक नगर में एक मन्दिर पर्याप्त नहीं। बृहन्मन्दिर साप्ताहिक

अधिवेशनों के काम आ सकता है । नित्य-कर्मों के लिये गली २ में सन्ध्यालय चाहियें ।

निर्धन भारतीयों में इतनी शक्ति कहां कि अपने २ गृहों में सन्ध्यालय का उत्तम प्रबन्ध कर सकें ? न इतनी कर्म-परायणता है कि प्रातः सायं बन को निकल जाएं । जो कर सकते हैं उन के लिये मनाई नहीं । धनी लोग अपने घर में सन्ध्यालय बना लें । साधारण जन मन्दिर ही में सन्ध्या कर लें तो ठीक है ।

आर्य्य-समाजों में हमने सन्ध्या की, और की जाती सुनी और देखी है । उच्चारणों का वैविध्य, क्रिया की भिन्नता और बहुधा अभाव, आसन में असावधानता, शुचि अशुचि से उपेक्षा—ये सब बातें किसी अद्भुतालय का दृश्य

दिखाती हैं । मानो इन लोगों का पन्थ एक नहीं । आर्य्य-समाज की भिन्न शाखाएं होंगी, एक समाज नहीं—ऐसा प्रतीत होता है ।

उक्त भेदों का विस्तार यहां तक हुआ है, कि यदि सन्ध्या सम्बन्धी पुस्तकों को ही पढ़ा जायं, तो भिन्न सम्प्रदायों की पद्धतियां प्रतीत होती हैं । पौराणिक भाई बताते हैं कि उनकी सन्ध्याओं की संख्या १०० से ऊपर हैं । आर्य्य भाई इस पर हास्य करते हैं । परन्तु अपनी झोली में भी दृष्टि डाली है? कहीं हम उसी फूट की तय्यारी तो नहीं करते। प्रायः आर्य्य भाई सन्ध्या का आरम्भ आचमन-मंत्र 'शन्नोदेवी' इत्यादि से करते हैं, जब कि स्वामी जी की स्पष्ट आज्ञा है कि पहिले गायत्री से शिखा-

बन्धन करो। आचमन कोई करता ही नहीं, जब कि स्वामी का आदेश है कि यह क्रिया तीन स्थानोंपर तीन २ बार की जाए। इत्यादि * ।

इन भेदों का प्रतिकार क्या है? यही

---

* पञ्चमहायज्ञविधि में स्वामी ने दो स्थानों पर आचमन की आज्ञा दी है, एक तो प्रथम गायत्री मन्त्र-उच्चारण के पीछे, दूसरे अघमर्षण मन्त्रों के पश्चात्। तीसरी बार आचमन करने का विधान दूसरी बार गायत्री पढ़ने से पूर्व है। यह विधान संस्कार विधि ही में है। संस्कारविधि और पञ्चमहायज्ञविधि के विधान मे कुछ मंत्रो का भेद भी है। संस्कार-विधि में मंत्र अधिक हैं, और क्रम भी एक स्थान पर भिन्न है। हम ने इस विषय मे पञ्चमहायज्ञविधि को प्रमाण माना है।

सन्ध्यालय ! जहां मिलकर सन्ध्या करने से ठीक रीति का प्रतिपादन और अनुकरण हो सके।

साधारण जनता में देखा-देखी का भाव बहुत होता है। जो काम मनुष्य अकेला संकोच-सहित करता है, वह मिल कर निस्संकोच तथा निरालस्य किया जाता है। सन्ध्यालय खुलने से सन्ध्या का प्रचार होगा, और प्रायः आर्य्य कर्तव्य-परायण होजाएंगे। सामाजिक लज्जा से बहुत कुछ इस उद्देश्य की सिद्धि में काम लिया जा सक्ता है।

सन्ध्या का समय दिन और रात का सन्धि है, जो लोहे की नहीं, चान्दी की नहीं, किन्तु आकाश की घड़ी पर उषा-रूपी भड़कीले अक्षरों में अंकित

देखा जासक्ता है ।

सन्ध्या का आसन पलत्थी है और छाती गर्दन और सिर को एक सीध में रखना । यही आसन शरीर के लिए लाभकारी है और इसी में ध्यान ठीक लगता है ।

शुद्धि का नियम यह है कि प्रातः तो स्नान कर लें, और सायं मुंह हाथ पांव धो लें । स्नान कर सकें तो और भी अच्छा । स्थान अत्यन्त उज्जवल और रमणीक हो । इस विषय में जितनी सावधानी करो, श्रेष्ठ है । कड़ी सीमा क्या बांधें ?

एक बात अवश्य ध्यान में रहे, कि सन्ध्या मुख्य है और नियम गौण । यद्यपि सन्ध्या को नियमों से पृथक् नहीं कर सक्के, परन्तु तो भी किसी

विशेष अवस्था में, उदाहरणतया रोग के समय, किसी २ नियम का उल्लंघन किया जासक्ता है। पर उल्लंघन का कारण अनिवार्य्य हो तब। यथा-शक्ति यत्न करना चाहिए कि कोई भी नियम न टूटे।

जैन्टलमैनी सन्ध्या से सन्ध्या न करना अच्छा है। यही न, परमात्मा का ध्यान न करोगे। कोई डर नहीं। पुण्य के बदले पाप न करो।

# टीका ।

आगे सन्ध्या के मन्त्र आएंगे । उनकी व्याख्या की जायगी । तत्सम्बन्धी क्रियाओं का विधान होगा । हमने अपने अनुभव का कुछ अंश पाठकों की भेंट किया है । इस से अधिक भाषा में शक्ति नहीं ।

जैसे हम अपने आपको उपासना समुद्र के अभी तट ही पर खड़ा समझ कर उस की किसी २ लहर का आनन्द उठाते हैं, इसी प्रकार प्रिय पाठकों को भी प्रेरणा करते हैं कि इन पृष्ठों को उस समुद्र का बिन्दु-मात्र ही समझें, और अपने अनुभव द्वारा इसे विस्तृत करते हुए

वेदामृत में डुबकी लगाएं। ऋषि वेद-मंत्रों के अर्थ योग द्वारा अवगत करते हैं। यही इस अपूर्व वाणी के पढ़ने और उस को जीवन में ढालने का एक-मात्र प्रकार है। हम पूर्ण योगी न सही, परन्तु जितना संभव है, हमें मन को एकाग्र कर, ऋषिकृत भाष्य का आश्रय ले, ऋषियों के ही मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए।

यदि उपासक ऐसा करे तो पूर्ण सफलता प्राप्त करे। सन्ध्या-विधि का क्रम निम्न है। इसी क्रम से मन्त्रों की व्याख्या और क्रिया का विधान किया गया है।

(१) गुरुमन्त्र द्वारा शिखा-बन्धन।

(२) आचमन।

(३) इन्द्रिय-स्पर्श।

(४) मार्जन।

(५) प्राणायाम।

(६) अघमर्षण के ३ मन्त्र।

(७) पुनराचमन।

(८) मनसा परिक्रमा के ६ मन्त्र।

(९) उपस्थान के ४ मन्त्र।

(१०) पुनराचमन।

(११) पुनः गुरुमन्त्र।

(१२) नमस्कार।

इस क्रम में भी एक रहस्य है जो व्याख्या पढ़ने से स्वयं विदित हो जाएगा।

# १—शिखा-बन्धन ।

यूं तो वेदों का अक्षर २ ही पवित्र ज्ञान का स्रोत है, और यह कहना भी नास्तिकता है कि वेद के अमुक स्थल में दूसरे स्थलों की अपेक्षा अधिक ज्ञानामृत है। तथापि समस्त वेद-मन्त्रों की शिखा गुरुमन्त्र को ठहराया है। यह शिरोमणि मन्त्र वेदों का सार है। द्विज का बाह्य चिन्ह यज्ञोपवीत है, तो अन्तरीय लक्षण गायत्री का ज्ञान है। जन्म के समय जब बालक बोलना नहीं जानता, हम उसे वेद-तिलक 'ओ३म्' का स्वाद चखा कर मधुमान् बनाते हैं। दूसरा जन्म सावित्री की गोद में गुरु के घर होता है। उस में प्रथम उपदेश इसी

सवितृ-मन्त्र का किया जाता है। इसी से इस मन्त्र का नाम गुरुमन्त्र है। या यों कहो कि सब मन्त्रों में गुरु अर्थात् प्रथम होने का गौरव रखने वाला यह मन्त्र है।

गायत्री मन्त्र इस को इस लिये कहते हैं कि इसका छन्द गायत्री है, जिस में २४ अक्षर होते हैं। इस मंत्र में एक अक्षर न्यून है। उसकी पूर्ति पिंगलसूत्र "इयादि पूरणः" के अनुसार "वरेण्यम्" में "इ" बढ़ाने अर्थात् इस शब्द को "वरेणियम्" पढ़ने से की जाती है। इसे गायत्री इस लिये भी कहते हैं कि यह गाने अर्थात् भजन करने वाले भक्त को भवसागर से तार देता है।

सवितृ-मंत्र भी इसी का नाम है। इस नाम का कारण यह है कि इस मंत्र का देवता सविता है अर्थात् इस मंत्र में

प्रेरक परमात्मा की स्तुति है और उसी से प्रार्थना की है ।

"वेद-माता" का अभिप्राय भी गायत्री मन्त्र है, क्योंकि यह मन्त्र वेदों का अत्यन्त मान करने वाला है, जैसे हम आगे व्याख्या में दिखायेंगे । यहां इतना ही समझ लेना पर्याप्त है कि वेद की शिक्षा इसी मन्त्र से आरम्भ होती है ।

सन्ध्या से पूर्व मार्जन करो, जिसका अभिप्राय मार्जन मंत्र के साथ बतायेंगे । तत्पश्चात् शिखा मंत्र से शिखा को बांधो, ताकि परमात्मा के सम्यक् ध्यान में बालों के बिखरने से मन न बिखरे । तथा शरीर के मुख्य भाग को छूकर धर्म्म के मुख्य अंग का ध्यान किया जाए । यहां प्राणायाम भी कर लेना चाहिए, जिसका प्रयोजन और विधि प्राणायाम मन्त्रों की

व्याख्या में बताई है—वहां देख लो।

## गुरुमन्त्र

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियोयोनः प्रचोदयात् ॥ ऋ० मं० ३ सू० ६२ मं० १०

अन्वय—भूः। भुवः । स्वः । सवितुः । देवस्य । ओ३म् ( परमात्मनः ) तत् । भर्गः। धीमहि । यः । नः । धियः । प्रचोदयात् ।

'ओ३म्'—अव् धातु से रक्षकार्थ है।

दूसरा अर्थ–इस शब्द में तीन मात्रायें हैं। अ, उ, म् । श्रीस्वामी दयानन्द जी ने (१) 'अ' से विराट् अर्थात् विविध जगत् का प्रकाशक, "अग्नि" ज्ञान-स्वरूप, पूजा

करने योग्य, "विश्व" अर्थात् सर्व-व्यापक (२) 'उ' से हिरण्य-गर्भ अर्थात् तेजोमय पदार्थों का आधार, वायु अर्थात् बलवान् "तेजस्" अर्थात् तेजोमय तथा (३) 'म्' से ईश्वर अर्थात् बलवान् आदित्य अखण्ड, प्राज्ञ अर्थात् ज्ञानवान् लिया है। माण्डूक्योपनिषद् में अ से वैश्वानर, उ से तेजस् और म् से प्राज्ञ अर्थ लिया है। सो जितनी दूर किसी ऋषि की दृष्टि पहुंची इस शब्द का उतना महत्व उसके बुद्धि-गोचर हुआ। बात यह है कि 'ओ३म्' नाम में परमात्मा के सब नाम आगए हैं। यह प्रभु का निज नाम है और सार्थक नाम है। प्रकरणानुसार इस शब्द की महिमा आगे दिखाई जायगी।

# भूः भुवः स्वः ।

यह तीन व्याहृतियां कहाती हैं । इन पर ऋषियों ने बहुत ध्यान लगाया है और विविध अर्थ बताए हैं । तैत्तिरीय-उपनिषद् में इनके यह अर्थ आते हैं ।

(१) "भूः" प्राण अर्थात् जो श्वास हम अन्दर लेते हैं ।

"भुवः" अपान अर्थात् जो श्वास बाहर जाता है ।

"स्वः" व्यान प्राण जो सारे शरीर में है। स्वामी जी प्राण का अभिप्राय जगत्प्राण परमात्मा लेते हैं । अपान से दुःखों का अपनयता (दूरीकर्त्ता) जगदीश, और व्यान से जगद्व्यान (सर्व-व्यापक प्रभु) ।

(२) भूः = ऋग्वेद, भुवः = यजुर्वेद, स्वः = सामवेद, और इन तीनों विद्याओं

से पूर्ण अथर्ववेद ।

(३) भू = पृथिवी, भुवः = अन्तरिक्ष अर्थात् आकाश, स्वः = द्युलोक अर्थात् सूर्य्यादि ।

मंत्र का अर्थ—( भूर्भुवः स्वः ) जगत्प्राण दुःखों के नाशक, सुख-स्वरूप, सर्वव्यापक. ( सवितुः ) प्रेरक तथा उत्पादक ( देवस्य ) प्रकाश स्वरूप ( ओ३म् ) ओ३म् के ( तत् ) उस प्रसिद्ध ( भर्गः ) तेज को हम ( भूर्भुवःस्वः ) पृथिवी, अन्तरिक्ष, तथा द्युलोकों में स्थित प्राणी, ऋग् आदि चार वेदों द्वारा प्राणायाम से मन में स्थित कर (धीमहि) धारण करते हैं अथवा ध्यान में लाते हैं (यः) जो ओ३म् ( नः )हमारी ( धियः ) बुद्धियों को ( प्रचोदयात् ) सन्मार्ग अर्थात् धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष में प्रेरित करे ।

बच्चे का स्वभाव है कि वह जो कुछ चाहता है, अपने लिये चाहता है। कुटुम्ब तथा समाज का विचार उस के संकुचित मस्तिष्क में नहीं समा सकता। ज्यों २ आयु बढ़ती है, गृहस्थ तथा समाज से सम्बन्ध जुड़ता है, त्यों २ मनुष्य स्वार्थगत जीवन को छोड़ संकोच की ग्रन्थियां तोड़ता है, और तब उस के परिश्रम का उद्देश्य स्वार्थ-पूर्ति नहीं, किन्तु स्वसन्तातिपालन तथा जाति का हितचिन्तन हो जाता है। यदि शिक्षा अनुकूल हो तो।

सन्ध्या का अभिप्राय मन को व्यक्तित्व के तंग वृत्त से बाहर निकाल विशाल करना है, जिसका केवल मात्र उपाय सर्वव्यापक परमात्मा का ध्यान है, जो भूः भुवः स्वः शब्दों से किया गया है।

इस पर भी बड़ी बात यह कि प्रार्थना केवल अपने लिये नहीं, किन्तु त्रिलोक-निवासी प्राणिमात्र के हितार्थ है। इस से बढ़कर और उदारता क्या हो?

हमने भूमिका में बताया था कि शक्तिमान् के ध्यान से शक्ति आती है। यहां 'धीमहि' शब्द का अर्थ धारण और ध्यान दोनों हैं। तैजस के तेज को ध्यान-गोचर कर स्वयम् तेजोमय बनने का प्रयत्न किया है। यही उपासना है। फिर उस का साधन भी बताया है कि यह वेदों के अध्ययन से ही संभव है।

परमात्मा 'सविता' है अर्थात् प्रेरक और उस से विनय की है कि हे प्रभो! हमारे हित और अहित को आप जानते हैं। हमें आप उस मार्ग में डालिये कि—

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्य्याचन्द्र-

मसाविव पुनर्दताघ्नता जानता संगमेमहि ॥

· ऋ० मं० ५ सू० ५१ मं० १५ ॥

जीवन के सब अंगों में सफलता प्राप्त हो और हम उदारता और अहिंसा के रास्ते आप के दर्शन करने के योग्य हों।

गुरु-मन्त्र में मानव जीवन का उद्देश्य रखकर आगे के मन्त्रों में उसकी पूर्ति के साधन वर्णन किये हैं।

गुरुमन्त्र ऐसा मन्त्र है, कि जिस विषय में लगाओ, लग जाय, यहां उपासना विषयक होने से इसी विषय के अर्थ किये हैं।

---

# २. आचमन-मन्त्र ।

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शंयोरभिस्रवन्तु नः ।

यo अo ३६ मंo १२ ॥

अन्वयः-ओ३म् देवी (देव्यः) आपः अभिष्टये पीतये नः शं भवन्तु । शं योः नः अभिस्रवन्तु (स्रावयन्तु)।

(ओ३म्) ईश्वर का निज नाम है यदि इस की पूरी व्याख्या की जाय तो इस में ईश्वर के सभी गुण और विशेषण आ जाते हैं। ऐसे विशाल अर्थ का संसार भर की भाषाओं में कोई और शब्द नहीं है।

(देवीः) सब अच्छे (दिव्य) गुणों का भण्डार। गुण दो प्रकार के हैं (१) देवी

(२) दानवी । जितने अच्छे गुण हैं अर्थात् वह गुण जो धारण करने चाहियें, उन्हें दिव्य गुण कहते हैं। इनके विपरीत जो त्याज्य अवगुण हैं, उन्हें दानवी गुण कहते हैं । ईश्वर को यहां देवी अर्थात् सद्गुण-विशिष्ट कहा है । विचार करने पर इस शब्द की विशालता का अनुमान किया जा सकता है ।

( आपः ) सर्व-व्यापक परमात्मा ( अभिष्टये ) चाही हुई अर्थात् पूर्ण ( पीतये ) तृप्ति अथवा आनन्द के लिये ( न ) हमें ( शं ) रोग मिटाने वाला अथवा सुख देने वाला ( भवन्तु ) हो ! और ( शंयोः ) सुख और अभय को (नः) हमारे ( अभि ) सब ओर से ( स्रवन्तु ) चुवाए ।

ओं के अतिरिक्त ' देवीः ' और 'आपः'

ईश्वर के नाम हैं । ये दोनों शब्द व्याकरण में बहुवचन और स्त्रीलिङ्ग के हैं । इनके लिये 'भवन्तु' और 'स्रवन्तु' क्रियाएं भी बहुवचन की आई हैं । शङ्का उठ सकती है कि ईश्वर तो एक है, उस के लिये बहुवचन का प्रयोग क्यों ? इसका उत्तर यह है कि 'आपः' शब्द एक वस्तु का नाम होता हुआ भी व्याकरण में बहुवचनवाची रहता है ।

ईश्वर का वास्तविक नाम, जैसे ऊपर बताया गया, ओ३म् है, जो व्याकरण में अव्यय है, अर्थात् विभक्तियों, वचनों, लिङ्गों के हेर फेर में नहीं आता । जैसे स्वयं ईश्वर सर्व अवस्थाओं में एकरस रहता है, वैसे ही उस का नाम भी सब दशाओं में एकरूप रहता है । 'आपः' आदि विशेषण-वाची हैं, सो अपने अर्थों

के अनुसार किसी वचन वा लिंग के हों, इस में हानि नहीं।

एक और शङ्का यह कीजायगी कि 'देवीः' शब्द द्वितीयांत है, उस के अर्थ प्रथमांत क्यों लें? 'आपः' शब्द जिसका यह विशेषण है, प्रथमान्त है। इन दो का मेल कैसे हुआ? इसका उत्तर यह है कि वेद मन्त्रों में विभक्ति-व्यत्यय होने से एक विभक्ति के शब्द का अर्थ दूसरी विभक्ति में लिया जा सकता है, निम्न सूत्रानुसार—

सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः।

अष्टाध्यायी। अ० ७ पा०१ सूत्र ३९

'शं' का अर्थ शांति है जो आनन्द शब्द से भी अधिक विशाल है। साधारणतः शान्ति तीन प्रकार की मानी गई है।

(१) 'आध्यात्मिक' अर्थात् शारीरिक नैरोग्य पूर्वक आत्मिक आनन्द (२) 'आधिभौतिक' अर्थात् दूसरे प्राणियों के प्रहारों और भौतिकतापों का अभाव। (३) 'आधि-दैविक' अर्थात् मन और इन्द्रियों की चंचलता और पूर्व जन्मों में संचित दुःखों के सन्ताप का नाश। प्रत्येक कार्य के अन्त में जो तीन बार शान्ति शब्द का प्रयोग होता है, उसका अभिप्राय इन तीनों तरह के दुःखों का निवारण होना है। इस मन्त्र में शान्ति स्वरूप ईश्वर से यह तीनों वर मांगे गये हैं। यह सन्ध्या की भूमिका है अर्थात् सन्ध्या करते समय प्रथम शरीर स्वच्छ और नीरोग होना चाहिये, दूसरे शत्रु का भय न हो। तीसरे मन विकार-रहित हो। दिन भर यही अवस्था रहे, तो

और भी अच्छी बात है। सन्ध्या का वास्तविक स्वरूप और अनुष्ठान यही है।

'स्रवन्तु' शब्द इस मन्त्र में कुछ विचित्र महत्व रखता है। जैसे दही की पोटली बांधकर लटका दें और उस में से पानी बून्द २ होकर टपकता रहे, इसी प्रकार शान्ति (अभि) सब ओर से हमारे अन्दर धीरे २ प्रवेश करे। उस में वर्षा की भान्ति वेग न हो क्योंकि वेग से शान्ति भंग हो जाती है।

जैसे 'आपः' प्रभु सब ओर है वैसे ही उसकी शान्ति भी सब ओर है। जीव उस शान्तिमय परमात्मा में लीन हुआ अभिलाषा करता है, कि ईश्वरीय आनन्द उस में सब ओर से चुवे। यही है असली योग अथवा समाधि।

जब इस मन्त्र को पढ़ो, अपने आपको शान्ति स्वरूप 'आपः' प्रभु के शान्ति मय राज्य में जानो, और सब प्रकार के भय तथा रोगादि मिटा दो। प्रातः संध्या इस व्रत के लिये प्रतिज्ञा है और सायं सन्ध्या उस प्रतिज्ञा की पड़ताल।

## आचमन क्यों करें ?

यह मन्त्र पढ़ कर तीन आचमन करने की विधि है। अर्थात् तीन वार जल लेकर ब्रह्म-तीर्थ से मुख में डाला जाता है। जल इतना कि कण्ठ से नीचे उतर जाय।

प्रश्न उठता है कि आचमन क्यों करें?

स्वामी जी लिखते हैं—आलस्य तथा कण्ठस्थ कफ की निवृत्यर्थ।

आचमन की विधि केवल सन्ध्या ही के आदि में नहीं, किन्तु प्रत्येक यज्ञ के आरम्भ में है। सन्ध्या में भी तीन स्थानों पर आचमन किया जाता है। इस लिये इस क्रिया का महत्व बताने की विशेष आवश्यकता है।

कफ आदि की निवृत्ति—जो सज्जन सभा, समाजों में आते जाते हैं, और भजनीकों तथा वक्ताओं के आलाप सुनते रहते हैं, उन को ज्ञात होगा कि जब वक्ता तथा भजनीक बोलता बोलता थक जाता है, तो वह पानी का एक आध घूंट पी लेता है। कभी आदि में ही यह क्रिया कर लेता है। इस का कारण क्या है? यही कि बोलने से गला बैठ जाता है, और जल उस को फिर से साफ कर के बोलने योग्य बना देता है। सन्ध्या में

भी आचमन का एक प्रयोजन यही है।

**आचमन और शांति**—जल का बड़ा महत्व यह है कि यह एक अनूठा शान्ति प्रद वस्तु है, जिसका अनुभव नहाने अथवा दो घूंट जल पान करने से हो सकता है। वैद्य कहते हैं, यदि प्रातः उठते ही थोड़ा सा पानी पीलें तो उदर-सम्बन्धी कोई रोग न रहने पाए, दूसरे शब्दों में पूर्ण स्वास्थ्य स्थिर रहे, क्योंकि सब व्याधियों का मूल उदर-सम्बन्धी विकार होते हैं। पिछले दिनों एक नई चिकित्सा-विधि का आविष्कार हुआ है, जिसको Hydropothy अर्थात् जल-चिकित्सा कहते हैं। उससे डाक्टर सब रोगों की निवृत्ति जल द्वारा करते हैं। यह तो हुई शरीर-सम्बन्धी अर्थात्

आध्यात्मिक शांति। इसी प्रकार आधि-भौतिक तथा आधि-दैविक शांति भी जल से प्राप्त होती है। उदाहरणतया कोई मनुष्य किसी मानसिक कलेश के कारण बिलख २ कर रो रहा हो। उसे ठण्डे पानी का एक घूंट पिला दो, और उसके मुख पर खूब जल के छींटे मारो, झट शान्त हो जाएगा। यही उपाय क्रोध आदि मानसिक विकारों का है। इस तीन प्रकार की शांति के लिए आचमन भी तीन बार किया जाता है। जब पहिला आचमन करो तो समझ लो, कि वह अध्यात्मिक शांति देगा। जब दूसरा करो तो उससे आधि-भौतिक शान्ति की इच्छा करो। एवं तीसरा आचमन आधि-दैविक शांति के लक्ष्य से करो।

—:-o-:—

# ईश्वर-स्मरण में जल की साक्षि

कई भाष्यकार आध्यात्मिक शांति का अर्थ आत्मा-परमात्मा का संयोग करते हैं। इस में जल की उपयोगिता एक कथा में दर्शाई गई है जो काल्पनिक होने पर भी रोचक और शिक्षा-दायक है। पाठकों के हितार्थ हम उसका उल्लेख यहां किए देते हैं!

एक वार आत्मा परमात्मा इकट्ठे थे। परम पिता परमेश्वर की गोद में उसका अमृत पुत्र पितृस्नेह का आनन्द ले रहा था। पिता पुत्र के दर्शन से और पुत्र पिता के लालन से प्रसन्न था। पुत्र के हृदय में चंचलता की तरंग उठी। कह उठा, पिता जी! छुट्टी दो, जरा आप की कृति देखें। ब्रह्माण्ड आपका राज्यक्षेत्र

है। मैं राजकुमार होने से उसके अव-लोकन का अधिकार तो रखता ही हूं।

पिता की आंखें आंसुओं में डुबडुबा गईं। बोले, पुत्र ! यहां क्या न्यूनता है, जो ब्रह्मांड में भ्रमण कर पूरी करोगे। यहां तुम्हारा मुख तो देखने को मिलता है। जगत् में गए और राज्य का सुख भोगा। युवती प्रकृति से आंखें चार हुईं तो वृद्ध पिता का स्मरण काहे को करोगे ?

पुत्र ने पिता का यह रंग पहले कभी न देखा था। चकित हुआ और कहा, पिता जी ! आप घट २ में वास रखने से सदैव पास ही तो होंगे, फिर आप से विमुख कोई क्योंकर होने लगा ? प्रकृति का प्रत्येक दृश्य आपकी द्युति का द्योतक है। ब्रह्माण्ड में ब्रह्म के दर्शन हैं। अणु २

का देखना आप का देखना है ।

यह शब्द सुनते ही पिता के होठों पर मुस्क्यान दौड़ गई । और बोले, यह सच है कि मेरी विभु व्यापकता विचालित दृष्टि के पांव पकड़ लेती है, परन्तु बिगड़े बच्चों की विमुखता की यह भी तो पूरी प्रतिकार नहीं । जब कोई नटखटा जीव एक बार निगोड़ा बन खड़ा होता है तो मेरा घट २ का वास भी तो उसे पास नहीं बुला सकता । आंख की पुतली में खड़ा आंखों की राह तकता हूं; खुले नेत्र मेरा ध्यान करें ही क्यों ? उनके लिए बाहर देखने को क्या कम है ? और जो कभी बन्द भी हो जाएं, तो सारा संसार का व्यवहार भूत बन कर आंखों के अन्दर नाचने लगता है, और मैं दृष्टि का सार, दृष्टि के बाहर चला जाता हूं ।

पुत्र—पिता जी! किसी प्रकार आप विश्वास कर भी सकते हैं?

पिता—हां! यदि कोई विश्वस्य साक्षी लाओ, जो मेरे स्मरण कराने का भार अपने ऊपर ले।

पुत्र सूर्य को लाया, अग्नि को, वायु को, संसार की सब देव-शक्तियों को लाया, परन्तु पिता का विश्वास न हुआ पर न हुआ।

अन्त में जल साक्षी बन कर आया! जल ने अपनी ही अंजलि लेकर शपथ की, कि और समय का तो मेरा जिम्मा नहीं। हां! जब कोई जीव मुझे छू लेगा, तब तो अवश्य उसे ईश्वर-नाम का उच्चारण करा दूंगा, और प्रभुपरायण वृत्ति उसके मन में जगा दूंगा।

परमात्मा को यह शपथ स्वीकार हुई।

कहा, जल को अंजलि का निरादर संसार में नहीं; हम भी इसे अपमानित नहीं करते। तब से और समय में परमात्मा याद हों न हों, परन्तु जल का एक छींटा शरीर पर पड़ा नहीं और प्रभु का नाम जिह्वा पर आया नहीं। एक घूंट जल पिया नहीं और आस्तिक बुद्धि अन्तःकरण में प्रबुद्ध हुई नहीं।

## इस मंत्र के भौतिक अर्थ।

'आपः' शब्द का अर्थ जल भी है। सो मन्त्र का दूसरा अर्थ यह है कि 'आपः' जल 'देवीः' अर्थात् अति गुणकर है। इससे तृप्ति होती है, और विविध शांति मिलती है। यह सब ओर

मे चू रहा है । अर्थात् सर्वत्र (वाष्प-रूप) विद्यमान है ।

प्रार्थना के रूप में मानो जल-सम्बन्धी सारा विज्ञान इस मन्त्र में भर दिया गया है । जल-चिकित्सा आदि विद्यायें इस मन्त्र का एक अंश-मात्र हैं ।

अथर्ववेद प्रथम काण्ड के सूक्त ४, ५, ६ जल के गुणों के बोधक हैं । यह मंत्र भी वहीं आता है । निम्न मन्त्र जल-चिकित्सा के विषय को और भी स्पष्ट करते हैं ।

अपस्व१न्तरमृतमप्सु भेषजम्। अ० का० सू० ४ मं० ।

अप्सु मे सोमोऽब्रवीदन्त विश्वानि भेषजा ।

अ० का० १ सू० ६ म० २ ॥

सन्ध्या करते समय इस मंत्र के वही

पहिले अर्थ लो, क्योंकि सन्ध्या तो उपासना है, और उपासना सर्व-व्यापक प्रभु की होती है जल की नहीं ।

---

## ३—इन्द्रिय-स्पर्श ।

ओं वाक् वाक् । ओं प्राणः प्राणः । ओं चक्षुः चक्षुः । ओं श्रोत्रं श्रोत्रं । ओं नाभिः । ओं हृदयं । ओं कण्ठः । ओं शिरः । ओं बाहुभ्यां यशोबलं । ओं करतलकरपृष्ठे ।

(ओ३म्) हे परमात्मन्! हम में (वाक् २) बोलने की शक्ति हो ।

(ओ३म्) हे प्राणनाथ! हमारे (प्राणः२) प्राण हों ।

(ओ३म्) हे सर्वद्रष्टः ! (सब को देखने वाले) हमारी (चक्षु २ः) आंखें हों तथा देखने की शक्ति हो ।

(ओ३म्) हे सर्व-श्रोतः ! (सब को सुनने वाले) हमारे (श्रोत्रं २) कान हों तथा सुनने की शक्ति हो ।

(ओ३म्) हे जगज्जनक ! हमारी (नाभिः) नाभि हो ।

(ओ३म्) हे हृदयेश्वर ! महारा (हृदयं) हृदय हो ।

(ओ३म्) हे सुख-स्वरूप ! हमारी (कण्ठः) गर्दन हो ।

(ओ३म्) हे पूज्य-शिरोमणि ! हमारा (शिरः) शिर हो ।

(ओ३म्) हे सम्पूर्ण बल-दातः ! (बाहुभ्याम्) हमारे बाजुओं के लिए (यशोबलं) यश और बल हो ।

(ओ३म्) हे सर्व-शक्तिमन् ! हमारी (करतलकरपृष्ठे) हाथ की हथेली और हाथ की पीठ हो।

उक्त अर्थ में हमने प्रत्येक वाक्य में "हो" शब्द अपनी ओर से लगा लिया है। प्रश्न किया जाएगा, जब मन्त्रों में इस के लिए शब्द नहीं, तो इसकी कल्पना क्यों करें? इसका उत्तर यह है कि संस्कृत में अस् धातु की क्रियायें प्रायः लुप्त हो जाती हैं; यहां "अस्तु" क्रिया प्रत्येक वाक्य में लुप्त है।

हवन से पूर्व भी इन्द्रिय-स्पर्श क्रिया की जाती है। वहां ये वाक्य हैं:—

ओं वाङम आस्येऽस्तु। ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु। इत्यादि

इनका अर्थ यह है, कि मेरे मुख में

बोलने की शक्ति हो, मेरी नासिकाओं में प्राण हों। इत्यादि २।

यही अर्थ सन्ध्या में लगाने चाहिएं। अब शङ्का यह रही कि यह इन्द्रियां क्या हों? इन्द्रिय-स्पर्श जहां किया जाता है, वहां बल की प्रार्थना होती है। यह ऋषियों का मत है। सो इस मन्त्र में भी बल ही की याचना की गई है। *

वैदिक-धर्म का यह बड़ा महत्व है कि यह दूसरे मतों की न्याईं शरीर का निरादर नहीं सिखाता, किन्तु आत्मिक उन्नति की पहिली सीढ़ी शारीरिक नैरोग्य को ठहराता है। आचमन-मन्त्र की व्याख्या करते हुए हमने शान्ति के तीन प्रकार बताये थे, जिन में प्रथम

* वेदारम्भ संस्कार में इन्द्रियस्पर्श के लिये यह वाक्य हैं:—"वाङ्मआप्यायताम्" इत्यादि।

आध्यात्मिक शान्ति अर्थात् शारीरिक नैरोग्य है। यह ऋषिवाक्य उस का अनुमोदन कर रहे हैं। योग-शास्त्र के कर्त्ता महामुनि पतञ्जलि ने योग में पहिला विघ्न व्याधि अर्थात् बीमारी को ठहराया है।

आजकल के विद्वानों का सिद्धान्त भी यही है कि उन्नत आत्मा केवल स्वस्थ शरीर में ठहर सकता है। यथा आंगल भाषा में लोकोक्ति है "Sound mind in a sound body" इसका अभिप्राय भी यही है।

सन्ध्या का महत्व वर्णन करते हुए हम ने बताया था कि सन्ध्या में जितनी प्रार्थनायें की जाती हैं, वह मानो उनकी पूर्ति की प्रतिज्ञाएं होती हैं। यह शरीरिक बल तथा यश की प्रार्थना भी उन सब

साधनों के प्रयुक्त करने का प्रण है जिन से बल व यश प्राप्त होता है। यदि यहां उन साधनों का संक्षेपतः वर्णन कर दिया जाए तो अनुचित न होगा।

इन वाक्यों में मानुषी देह के मुख्य २ अंगों के नाम आ गये हैं। इनके साथ समस्त देह को सम्मिलित समझना चाहिए। यदि इन्हीं को बलिष्ठ करने में पूर्ण ध्यान दिया जाए, तो सारा शरीर हृष्ट पुष्ट रहे।

सब से प्रथम वागिन्द्रिय का नाम लिखा है। मानस विद्या वेत्ताओं का सिद्धान्त है कि मानसिक उन्नति अर्थात् विचार-शक्ति का विकास वागिन्द्रिय के विकास के साथ २ होता है। जो बालक गूंगे रहते हैं उनकी मानसिक वृद्धि रुक जाती है। हम कैसा ही मौन धारण

करके सोचें, हमारी जिह्वा परोक्ष रूप में काम करती ही रहेगी। हमें एक विद्यार्थी का वृत्तान्त स्मरण है जिसकी जिह्वा बोलते समय अटकती थी। परीक्षा मन्दिर में प्रश्नों का उत्तर लिखते हुए उसकी लेखनी भी शीघ्र नहीं चल सकती थी, क्योंकि लिखते समय जिह्वा और लेखनी दोनों एक साथ काम करती हैं। यतः मनुष्य मनन-शील पशु है और मनन-क्रिया का निर्भर वागिन्द्रिय के विकास पर है, अतः इस इन्द्रिय की ओर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

वागिन्द्रिय की बलिष्ठता इस में है कि जितने प्रकार के शब्द मनुष्य के मुख से निकल सकते हैं, वह सब शुद्ध उच्चारण के साथ जीभ पर लाये जासकें कई बालक श्रेणी में अथवा किसी और

जगह बल-पूर्वक नहीं बोल सकते, तो अध्यापक उन्हें शिक्षा देता है कि एकान्त में सन्था पढ़ने का अभ्यास किया करो।

यह शिक्षा यथार्थ है। यदि ऐसा अभ्यास संस्कृत में किया जाए, तो और भाषाओं की अपेक्षा अधिक लाभ हो, क्योंकि संस्कृत की वर्ण-माला में सभी आवाज़ें, जो मनुष्य के मुख से निकल सकती हैं, एक अनूठे क्रम के साथ सम्मिलित हैं। दूसरी भाषाओं में यह बात नहीं। फ़ारसी में "ड" और "ट" नहीं, तो अंगरेज़ी आदि में "त" तथा "ञ" नहीं।

संस्कृत का कोई अन्य विषय क्या लोगे? इसी सन्ध्या का ही ऊंचे स्वर से शुद्ध उच्चारण करने से अभीष्ट से अधिक लाभ होगा। योगियों में इस से भी

सुगम अभ्यास प्रचलित है । वह प्राणायाम के साथ २ "ओं" शब्द का उच्चारण करते हैं । ओं शब्द का महत्व यह है कि यह सब मानुषी स्वरों पर व्याप्त है । जैसे परमात्मा सर्व-व्यापक होने से सारी सृष्टि पर छाया हुआ है, इसी प्रकार उसका नाम 'ओं' भी गले के नीचे से निकलकर मुख के सारे वाक् स्थानों अर्थात् कण्ठ, तालु, होंठ इत्यादि का भ्रमण करता हुआ होंठों पर समाप्त हो जाता है, जिसके उच्चारण करते ही मुख बन्द होजाता है कि बस ! आगे वाणी नहीं जा सकती ।

॥ दोहा ॥

तुलसी 'रा' अस कहत ही,
निकसत पाप—पहाड़ ।

फिर आवन पावत नहीं,
देत 'म'-कार किवाड़ ॥

यदि 'रा' की जगह हम 'ओ' रखदें तो यही दोहा ओ३म् पर लग जाता है। "राम" में "म" सस्वर है। उसके उच्चारण में होठ खुल जाने चाहिएं। ओ३म् में "म्" व्यञ्जन है, अतः दोहा घटता ही "ओ३म्" पर है। ओं के उच्चारण में सभी आवाज़ें आजाती हैं। किन्तु बात यह है कि ओं बोलते हुए सब वाक् स्थानों को हरकत में लाया जाए। स्यात् सब लोग ऐसा न कर सकें, सन्ध्या का उच्चारण लाभकारी होगा।

यह हुआ ओं वाक् वाक्। यदि हम इसी प्रकार शेष वाक्यों पर बल देते गये, तो सारी पुस्तक इन्हीं पर समाप्त

हो जाएगी। आगे हम अतीव संक्षेप से काम लेकर पाठकों से विनय करेंगे कि दूसरी इन्द्रियों का महत्व स्वयं विचारें और उन्हें शक्तिमती बनाने के उपाय प्रयुक्त करें, ताकि शारीरिक बल की प्रार्थना सार्थक हो।

प्राणों का सविस्तर वर्णन प्राणायाम-मन्त्रों की व्याख्या में आजायगा। यहां इतना जान लो कि जीवन का निर्भर प्राणों की यथार्थ गति पर है, और इस गति का उपाय प्राणायाम है।

चक्षुओं की रक्षा के लिए उन पर प्रातः ठण्ढे जल के छींटे मारा करो। थोड़े प्रकाश में न पढ़ो। सोकर न पढ़ो। अधिक प्रकाश में न ठहरो। मिर्च आदि न खाओ। हरियावल पर दृष्टि रक्खा करो। इत्यादि २।

कानों के लिये सावधानी यह रक्खो कि उन्हें तिनके आदि से छेड़ो नहीं। शेष रक्षा कान अपनी आप करते हैं।

नाभि का नाम इन ऋषि-वाक्यों में आने पर कई लोग शङ्का करते हैं, कि वाक्, प्राण, चक्षु आदि तो, मान लिया काम के अंग हैं, परन्तु नाभि जो शरीर के मध्य भाग में एक गांठ-मात्र है, उसका बल बढ़ाना क्या? ऐसे महाशयों को किसी नवजात बालक का विचार करना चाहिए। उसकी नाभि के साथ एक नाड़ी लगी होती है, जिसे जात-कर्म संस्कार में काट लेते हैं। गर्भ में माता के शरीर के साथ बच्चे का सम्बन्ध इसी नाड़ी द्वारा होता है। इसी से उसके अन्दर आहार आदि जाता है। नाभि के अन्दर एक ऐसा यन्त्र है, जो उस आहार

को बच्चे के शरीर का अंश बनाता है। जन्म होने पर हम ने बाह्य नाड़ी को काट दिया, परन्तु नाभि के अन्दर का यन्त्र नष्ट नहीं हुआ। अब हम अपना आहार मुख के रास्ते अन्दर ले जाते हैं, सो बाह्य नाड़ी की आवश्यकता नहीं। किन्तु हमें वैद्य बताते हैं कि इस आहार का पाचन नाभिस्थ प्राण (उदान) से प्रदीप्त जठराग्नि द्वारा होता है। योगियों की योग-सिद्धि मूल-स्थान से नाभि तक जल चढ़ाकर नाभि चक्र के साफ़ करने से होती है। गवैय्यों का प्रथम अर्थात् सब से नीचा स्वर नाभि से उठता है। यह है महत्व नाभि का।

अब इसे पुष्टि क्योंकर दें? प्राणायाम से। नाभि से अभिप्राय नाभि के आस पास का प्रदेश अर्थात् उदर, कलेजा,

तिल्ली, गुर्दा इत्यादि भी हो सकता है। इन सब अंगों को शक्ति-युक्त करने के लिये व्यायाम करो। प्राणायाम से भी उन्हें बहुत लाभ होगा।

हृदय रुधिर का केन्द्र है। इस की धड़क ठीक हो तो स्वास्थ्य नहीं बिगड़ता। व्याय.म और प्राणायाम इस में अपूर्व साधन हैं। कण्ठ प्राणों का मार्ग है, आहार की नाली है, नासिकाएं और मुख यहां मिलते हैं। गला ज़ोर से दब जाए, तो मृत्यु हो जाती है. प्राणायाम और आचमन करने से इस की अवस्था भी ठीक रह सकती है। शिर प्रधान अङ्ग है, इस में वीर्य रहता है, जो सारे शरीर का सार है। विचार, स्मृति आदि शक्तियां भी शिर ही में स्थित हैं। शिर की पुष्टि विशेषतया ब्रह्मचर्य्य से होती है।

बाहुओं टांगों के लिए डण्ड आदि व्यायाम का अभ्यास करें । इसी से हाथ भी पुष्ट होंगे । नव-युवकों में बान पड़ रही है कि वे छोटे से छोटा भार भी उठाने से लजाते हैं । यह मानुषी-शक्ति का अपमान है। इस से हाथ श्वेत तो रहेंगे और मोम के हाथों की तरह देखने में सुन्दर भी प्रतीत होंगे: परन्तु वास्तविक-काम करने योग्य-हाथ नष्ट हो जाएंगे ।

जितने अंगों का नाम ऊपर लिया गया, सब आपस में संगठित हैं। एक का विकास दूसरे का भी विकास है। इस लिए एक से ही साधन सब अंगों को लाभकारी हैं। सामान्यतः शरीर की पुष्टि के लिए सात्विक भोजन, व्यायाम और ब्रह्मचर्य साधन हैं । औषधियां और पाचन, पाक, नहीं ।

# इन्द्रिय-स्पर्श विधि ।

इन वाक्यों का नाम इन्द्रिय-स्पर्श मन्त्र है, अर्थात् इनके उच्चारण के साथ साथ अङ्गों को छूना होता है। यह क्यों? इस लिये कि मन की प्रवृत्ति इन अङ्गों की ओर हो। विद्यालयों में शिक्षा की उत्तम विधि यही समझी जाती है कि जो शब्द मुख से कहें, उन की क्रिया हाथ से करें। सम्भव है, इस क्रिया के बिना भी मन इन अंगों का विचार कर सके; परन्तु सर्वत्र ऐसा होना आवश्यक नहीं, अतः क्रिया करनी ही श्रेष्ठ है। व्यायाम और आहार करते समय इन वाक्यों का अर्थ विचारें तो बहुत लाभ होगा। ऐसा करने से मुखादि

इन्द्रियों की क्रियाओं में मन की क्रिया भी सम्मिलत हो जायगी और क्रिया का फल कई गुणा अधिक होगा । बड़े २ योग्य पहलवानों की सम्मति है कि व्यायाम करते समय जिस अंग को बलिष्ठ करना हो, उसका विशेष ध्यान रखकर उसे बार २ छूना चाहिये, इस से व्यायाम पूर्णतया सफल होगा । इन मन्त्रों में इन्द्रिय-स्पर्श का यही अभिप्राय है ।

---

## बालबोधिनी चेष्टा ।

एक वार एक शास्त्रार्थ में प्रतिपक्षी ने इंद्रिय स्पर्श क्रिया पर ठट्ठा किया था, कि यह तो एक ऐसे अबोध बालक का सा खेल है, जो अपने अंगों का नाम

अभी अपनी माता से सीख रहा है। माता कहती है 'वाक्' वह मुख पर हाथ रखता है और कहता है 'वाक्'। ऐसे ही चक्षुः २ इत्यादि।

आर्य पण्डित ने इस का जो उत्तर दिया सो तो यथोचित ही था। वह ऊपर की व्याख्या में आ चुका है। परन्तु लेखक के मन में रह २ कर स्फूर्ति होती है कि हमें बच्चों की सी चेष्टा से भी लज्जा क्यों हो? वेद कहता है कि--

ओ३म् स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये।

अर्थात् परमात्मा को प्राप्त करना है तो बालक की सी वृत्ति धारण करो। जैसे थका हुआ और रुष्ट पिता भी जो क्रोध के समय किसी दूसरे प्राणी का

मुख नहीं देख सकता, जब अपने जिगर के टुकड़े, आंखों के प्रकाश, तुतलाते बच्चे के पसारे हुए बाहु देख पाता है तो उस की भुजाएं बढ़ने से रुक नहीं सकतीं। म्लान मुख खिल उठता है, मानों दिन भर की थकान एक अनजान बच्चे के मुसकराते मुखड़े ने दूर कर दी। ऐसे ही परम पिता परमात्मा जिन्हें योगी योग की कठिनाइयां झेल कर पाते हैं, जो सूधे इन्द्रियों से देखे नहीं जाते, हाथ फैलाये गले लगाने को दौड़ते हैं, जब उन का कोई अमृत-पुत्र मुग्ध बालक की तरह निष्कपट प्रेमरत हुआ तन्मय हो जाता है।

सन्ध्या में उपासक की वृत्ति वही तो होता है, जो एक सूधे सरल बच्चे की।

प्रश्न किया जा सकता है, कि इस

अवस्था में भी इन्द्रियों को छूना और उनका नाम लेना किस अभिप्राय से है?

इसका अभिप्राय वही है जो माता अथवा पिता की गोदी में तुतलाते बच्चे का होता है, जब वह अंगों को छूता और उन का नाम लेता है।

हमें परमात्म-देव सिखा चुके कि यह वाक् है, यह प्राण है इत्यादि। परन्तु हम में से कितने हैं जिन्हें यह पाठ याद है। वह वाक् वाक् नहीं जो शब्दों का उच्चारण स्पष्ट, सस्वर, तीक्ष्ण करना हो तो तीक्ष्ण, मृदुता की अपेक्षा हो तो मृदु, गम्भीर अभीष्ट हो तो गम्भीर, नहीं कर सकती। इसके अतिरिक्त सत्य, मित, पिशुनतारहित, समयोचित भाषण ही तो वाणी का सार हैं।

चक्षुः वही चक्षुः है जो एक ओर तो

अर्जुन की भांति वृक्ष की उच्चतम चोटी पर बैठी चिड़िया की आंख में भी पुतली को देख ले और उस में इतना समाहित हो कि अन्य कुछ न देखे, दूसरी ओर जो देखे सो भद्र हो। अर्थात् दूरदर्शी भी हों और भद्रदर्शी भी, तब सार्थक नेत्र हैं।

ऐसे ही कान, जिन के भाग में ध्वनि के ज्ञान के साथ दिशा का ज्ञान आया है। वह भी ऐसे हों जैसे दशरथ महाराज तथा पृथिवीराज चौहान के विषय में वर्णन है कि शब्द सुन कर आंखों से छिपे लक्ष्य को बाण से बेध देते थे।

और इसी प्रकार दूसरी सारी इन्द्रियां जहां अपने विषय के ग्रहण में प्रबल हों, वहां अभद्र का ग्रहण न करें।

जब तक इस विषय में लेश मात्र भी

त्रुटि है; पिता की गोदी में आंखों और कानों तथा नासिकाओं एवं अन्य इन्द्रियों को हाथ लगा २ कर चेतावनी लेने की आवश्यकता है कि यह श्रोत्र हैं, यह नेत्र हैं, यह प्राणों का मार्ग है, इत्यादि।

---

## ४. मार्जन मंत्राः।

ओ३म् भूः पुनातु शिरसि। ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः। ओं स्वः पुनातु कण्ठे। ओं महः पुनातु हृदये। ओं जनः पुनातु नाभ्यम्। ओं तपः पुनातु पादयोः। ओं सत्यं पुनातु पुनः शिरसि। ओं खंब्रह्म पुनातु सर्वत्र।

( ओं भूः ) जगत् का जीवन अथवा प्राण-प्रिय ओम् ( पुनातु ) पवित्रता करे ( शिरसि ) शिर में।

( ओं भुवः ) प्रकृति का उदान अर्थात् उस में रह कर उस से पृथक् अथवा दुःखनाशक ओ३म् ( पुनातु ) पवित्रता करे ( नेत्रयोः ) आंखों में।

( ओं स्वः ) जगत् का व्यान अर्थात् सर्व-व्यापी ओम् ( पुनातु ) पवित्रता करे ( कण्ठे ) गर्दन में।

( ओं महः ) सब से महान् ओम् ( पुनातु ) पवित्रता करे ( नाभ्याम् ) नाभि में।

( ओं तपः ) तप अर्थात् ज्ञान वा धर्म-स्वरूप अथवा दुष्टों को दण्ड देने वाला ओं ( पुनातु ) पवित्रता करे ( पादयोः ) टांगों में।

( ओं सत्यम् ) नित्य, अविनाशी ओम् ( पुनातु ) पवित्रता करे ( पुनः ) फिर ( शिरसि ) शिर में ।

( ओं खम्ब्रह्म ) सर्व-व्यापी और सब से बड़ा ओम् ( पुनातु ) पवित्रता करे ( सर्वत्र ) सारे शरीर में ।

'ओ३म्' से उतर कर 'भूः' 'भुवः' और 'स्वः' ये तीन ईश्वर के नाम बहुत महत्व के कहे गये हैं । विविध टीकाकारों ने इन के विविध अर्थ किये हैं, परन्तु यहां वही अर्थ पर्याप्त हैं जो ऊपर दिये गये हैं ।

उक्त आठ मन्त्रों में भूः भुवः इत्यादि नाम लेकर शरीर के क्रमशः सब प्रदेशों की शुद्धि की प्रार्थना की गई है । अब यह तो प्रार्थना का ठट्ठा ही उड़ाना होगा, कि मैला मुंह लेकर हम ईश्वर

के आगे बैठ जाएं, और इन मन्त्रों के उच्चारण से यह आशा करें कि आकाश से जल बरसेगा, और हमारे मुख का मैल बहा ले जाएगा। पहिले भी यह बात जताई थी और अब फिर उसी पर बल देते हैं "कि प्रार्थना प्रतिज्ञा है"। पवित्रता मांगने का प्रयोजन यह है कि हम पवित्रता ग्रहण करेंगे।

फिर पवित्रता होती है दो प्रकार की—एक बाह्या अर्थात् बाहर की, दूसरी अभ्यन्तरा अर्थात् अन्दर की। बाहिर की शुद्धि जलादि से होती है और अन्दर की सत्य से। मनु जी कहते हैं कि:—

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति,
मनः सत्येन शुद्ध्यति ॥

मार्जन मन्त्रों में पहले शिर प्रदेश की शुद्धि

आई है। इस प्रदेश में शिर का बालों वाला भाग, माथा, नेत्र तथा श्रोत्र आदि सब आजाते हैं. आजकल बाल संवारने का फ़ैशन होरहा है, और कंघा किए हुए, माथे पर के चमकीले बाल सभ्यता के चिन्ह समझे जाते हैं। अतः बालक और युवक बाहिर जाते हुए इन बालों को तेल लगाकर भड़कीला बना लेते हैं परन्तु शिर के नित्यंप्रति धोने पर ध्यान नहीं देते, विशेषतया शीत के दिनों। यह बड़ी भूल है। वास्तविक सुन्दरता बनाव शृंगार में नहीं, किन्तु शुद्धता में है। यदि शिर के बाल बहुत छोटे करा दिए जाएं, तो उन में मैल रह ही न सके। कुछ हो, शिर को प्रतिदिन जल से अच्छी तरह धोना चाहिए, और उस में न तो मिट्टी ही रहने देनी चाहिए, न

जूएं और कीट।

नेत्रों को इस प्रदेश से भिन्न भी ले लिया है. यह इस लिए कि सिर प्रदेश के आदि अन्य अंग इतना विशेष ध्यान नहीं चाहते, जितना नेत्र।

तत्पश्चात् ग्रीवा आती है। उस में मुख भी सम्मिलित करलो, क्योंकि इन दोनों की नाली एक है। इस भाग की शुद्धि के लिए प्रथम तो दातन रोज़ करना चाहिए, जिस से दान्तों और जिह्वा की मैल उतर जाए। दूसरे आचमन द्वारा कण्ठस्थ कफ़ की निवृत्ति करते रहो। कण्ठ का बाह्य भाग भी नहाते समय जल से धोलो। कई लोग कानों के पिछले भाग की परवाह नहीं करते, यह असावधानी हानिकर है। सम्पूर्ण ग्रीवा को अन्दर बाहिर से

धोवो ।

अब आया हृदय-प्रदेश, अर्थात् छाती और उस के अन्दर के अंग । बाहिर तो पानी का प्रयोग करो, और अन्दर के लिए प्राणायाम उपयोगी है, जिसका वर्णन आगे आएगा ।

नाभि का महत्व इन्द्रिय-स्पर्श प्रकरण में बताया गया था । इस भाग में उदर तिल्ली, गुर्दा इत्यादि अंग आजाते हैं । प्राणायाम इन सब को लाभदायक है । उदर के लिये प्रातःकाल दो घूंट पानी पीना गुणकारी होगा । गुर्दे और मसाने पर पानी बहाओ । यह स्मरण रहे, कि मद्य मांस, सिग्रेट, लैमोनेड तथा बर्फ़ आदि इस प्रदेश के लिए विष हैं । अतः इन वस्तुओं को सर्वथा त्याग किए रक्खो ।

"पादयोः" में गुप्त इन्द्रियों और

टांगों का भी समावेश है। इस भाग को शूद्र समझ कर इस से असावधान मत हो। शेष शरीर के साथ इस अंग को मल कर धोना आवश्यक है। गुप्त इन्द्रियों के विषय में हम यह कहने से नहीं रह सकते कि ये जितनी गुप्त हैं, उतनी अधिक शुद्धता चाहती हैं।

दुर्भाग्य से हमारी जाति आज नियम-भ्रष्ट हो चली है, नहीं तो हमारे शुद्धता-सम्बन्धी नियम ऐसे हैं, कि देख कर संसार चकित है। संक्षेप से हम इस विषय में यह शिक्षा देंगे कि—

शौच के समय गुदा को दो चार बार मिट्टी लगा कर धोवो, मूत्रेन्द्रिय को एक बार। फिर बाएं हाथ को जिस से इन्द्रियां साफ की हों, बार बार मिट्टी लगाओ। और फिर दोनों हाथों को

मिट्टी लगाकर खूब धोवे। मिट्टी इस लिये लगाते हैं कि इस से दुर्गन्ध का नाश होता है। परन्तु मिट्टी अति शुद्ध होनी चाहिए। साबुन से भी यह क्रिया की जाती है परन्तु, उस से कुछ लाभ नहीं। लघुशंका करने पर भी मूत्रेन्द्रिय को धो लेना चाहिए। क्या हमें यह बताने की आवश्यकता है कि हम इस विषय में कितने गिर गये हैं? हमें इस ओर ध्यान देते भी लज्जा आती है। अत्युक्ति के भय से हम यह न कहेंगे कि कोई विष्ठा आहार में मिलाता है, किन्तु साधारण जनता के खाने वाले हाथ प्रायः विष्ठा-युक्त तो होते ही हैं।

इस प्रकार शरीर के सारे भागों को पृथक् २ लेकर फिर शिर का नाम आया। यह मानो नहाने की विधि

बताई कि सारे अंगों को उक्त क्रम से धोकर फिर सिर पर पानी डालो और सर्वत्र यही क्रिया करो।

यह थी बाह्या शुद्धि। आभ्यन्तरा शुद्धि मन की है। क्योंकि मन की समस्त क्रियाएं इन्द्रियों द्वारा होती हैं, इस लिए एक २ इन्द्रिय का नाम लेकर उस के निग्रह की प्रार्थना की गई। सिर में सुविचार-धारण, नेत्रों से शुभ-दृष्टि-पातन, ग्रीवा से शुद्ध, मधुर वाक्य-निष्कासन, हृदय में राग द्वेष-रहित विशाल प्रेम-संस्थापना जिस में काम क्रोध का लेश भी न हो, नाभि से सात्विक पदार्थों का पाचन, पांवों से सन्मार्ग-सेवन यह अन्दर की शुद्धि है।

# मार्जन का अभिप्राय।

उक्त आठ मन्त्रों को कहते हुए मार्जन करना होता है, अर्थात् जिस अंग का नाम लिया उस पर थोड़ासा जल छिड़क दिया। ऐसा क्यों? इस विधि में दो अभिप्राय हैं। एक तो आलस्य का त्याग। इस पर उदाहरण लीजिये। जब बालक प्रातःकाल होने पर भी नींद से सचेत न हो, तो चतुर माता उस के मुख पर पानी के छींटे देती है। तब वह तत्क्षण उठ बैठता है। इसी प्रकार यदि विद्यार्थी परीक्षा के दिनों नियत समय से अधिक पढ़ना चाहे, परन्तु नींद इसमें बाधक हो तो वह मुंह धो लेता है। एवं सन्ध्या में भी आलस्य होने लगे तो मार्जन

कर लो ।

दूसरा प्रयोजन इस क्रिया का यह है कि मन्त्रों में पवित्रता की प्रार्थना है और पवित्रता होती है पानी से । क्रिया-युक्त होकर हमारा प्रण दृढ़ हो जाता है, और हमें स्मरण रहता है कि जिन अङ्गों को मार्जन-मन्त्रों से पानी लगाया था, उन्हें स्नान में पूर्णतया धोना चाहिये। यदि हमें सन्ध्या का अभ्यास होता और उसमें आई हुई मार्जन-क्रिया का अभिप्राय याद रखते, तो हमारे व्यवहार शुद्धता-शून्य न होते, हम नहाने में दिखावा न करते और उस शौच का पूरा अनुष्ठान करते जि•न मनु ने धर्म का विशेष अङ्ग बताया है। यदि नहाते समय इन मन्त्रों के अर्थ पर ध्यान देकर एक २ अङ्ग धोएं, तो विशेष लाभ हो ॥

—o—

# ५—प्राणायाम मंत्राः ।

ओ३म् भूः । ओं भुवः । ओं स्वः । ओं महः । ओं जनः । ओं तपः । ओं सत्यम् ॥

इन मन्त्रों का अर्थ मार्जन-मन्त्रों में दिया जा चुका है । हम यहां केवल उस क्रिया का विधान करेंगे, जो इन मन्त्रों के साथ प्रयोग में आती है । इस क्रिया को "प्राणायाम" कहते हैं ।

प्राणायाम का अर्थ है प्राणोंको रोकना । इसकी विधि स्वामी जी इस प्रकार लिखते हैं कि पहले श्वास को बल-पूर्वक दोनों नथनों से निकाल दो, और जितना समय सुगमता से हो सके, उसे बाहिर रोके रखो । फिर धीरे २ अन्दर खींचो

और वहां भी जितनी देर हो सके ठहराओ। यह एक प्राणायाम हुआ। न्यून से न्यून ऐसे तीन प्राणायाम करने चाहियें॥

पञ्चमहायज्ञविधि में लिखा है, कि सन्ध्या के आदि ही में आचमन-मन्त्र (शन्नोदेवी०) पढ़ने से पूर्व मार्जन करके प्राणायाम करो। फिर इन प्राणायाम-मन्त्रों के साथ भी करो। और जब अघ-मर्षण होकर फिर आचमन हो चुके, तो फिर प्राणायाम कर लो। इत्यादि।

प्राणायाम हमारी उपासना का एक महान् अङ्ग है। अतः इसके लाभ पर दृष्टि डालना विशेषतया उपयोगी होगा।

सन्ध्या से पूर्व जो प्राणायाम किया जाता है, उस के वे लाभ भी हैं जिनका वर्णन नीचे आएगा। विशेष लाभ यह है कि इस से सन्ध्या का आसन

जम जाता है । और शरीर आलस्य त्यागकर सचेत होजाता है । सामान्यावस्था में भी जब लिखते २ अथवा पढ़ते २ थक जाओ, और कमर दुखने लगे, तो प्राणायाम करलो, कमर सीधी हो जाएगी। सन्ध्या में तो विशेषतः और शेष कार्य्यों में सामान्यतः यह अत्युत्तम है कि शिर, गर्दन और छाती एक सीध में हों। प्राणायाम करने से अनायास ऐसा आसन जम जाता है। अतः दिन में जितनी वार यह क्रिया करोगे, उतना ही अपने शरीर को टेढ़ा होने से बचाओगे और बुढ़ापा दूर रहेगा।

प्राणायाम रोग मिटाता है–आचमन मन्त्र की व्याख्या करते हुए हम ने एक प्रकार की वैद्यक का नाम लिया था, और बताया था कि कई डाक्टर केवल

जल के प्रयोग से रोगों की चिकित्सा करते हैं। ऐसी ही एक और विधि आक्सी-पेथी अर्थात् वायु द्वारा रोग-विनाश की है। जल की अपेक्षा वायु अति सूक्ष्म है। इसलिए इसका प्रवेश शरीर के उन अंगों में भी हो सकता है, जहां जल नहीं पहुंच सकता। परन्तु डाक्टरों को इस क्रिया में वह सफलता नहीं जो योगी का है। क्योंकि योगी प्राणायाम के अभ्यास से जहां चाहे वायु पहुंचा सकता है। यह सच है कि हमारे ऋषियों के बताए हुए नियमों का जितना अनुकरण आधुनिक विद्वान् करेंगे, उतना ही उनका यत्न फलीभूत होगा।

आज कल क्षयी रोग का बड़ा जोर है। बालक से लेकर वृद्ध तक सब अपनी श्वास की गति बिगाड़ चुके हैं। उनके

प्राण फेफड़ों के निचले भाग तक नहीं पहुंचते, और वहां रोग के जन्तु उत्पन्न हो जाते हैं। इसका उपाय केवल यही है कि दीर्घ श्वास लेकर सम्पूर्ण फेफड़ों को खोला जाय। जितना इसका अभ्यास करोगे उतना स्वास्थ्य लाभ करोगे।

दीर्घ-श्वास से हृदय का रुधिर साफ़ होगा, उदर-संबन्धी व्याधियां दूर होंगी, और पाचन-शक्ति अच्छी रहेगी।

प्राणायाम से बल बढ़ता है—स्वस्थ शरीर स्वयं बलिष्ठ होता रहता है। प्राणायाम का इसमें अद्भुत चमत्कार है। दूर क्यों जाओ? अपने देश-भाई राममूर्ति को देखलो। छाती के बल से लोहे की मोटी ज़ंजीर तोड़ देता है। यह क्योंकर? केवल प्राणायाम-द्वारा।

छाती पर हाथी चढ़ा लेता है। यह क्यों-कर? केवल प्राणायाम द्वारा। छाती में वायु भर लेने से उसमें अपूर्व-शक्ति आ जाती है। प्रमाण चाहो तो यह भी स्वयं करके देख लो।

**प्राणायाम से आधिदैविक शांति—** उपासना में प्राणायाम का विधान इस लिए है कि इससे मन एकाग्र होता है। बाह्य जगत् के साथ मन का सम्बन्ध इन्द्रियों द्वारा है। जितने संकल्प विकल्प हमारे अन्तःकरण में उठते हैं, उनका मूलकारण हमारी इन्द्रियां ही होती हैं। अतः मन को एकाग्र करने के लिए इन्द्रियों को वश में लाना चाहिए। परन्तु प्रत्येक इन्द्रिय का संचालक कोई न कोई प्राण अथवा उपप्राण है। अतः इन्द्रिय-दमन की कुंजी ही प्राणायाम है।

शरीर और प्राण का वही सम्बन्ध है जो रेलगाड़ी और भाप का है । ड्राइवर भाप की गति नियमित रखने से रेल की गति जैसी चाहता है करता है । यदि तुम भी शरीर-रूपी गाड़ी के कृतकार्य ड्राइवर बनना चाहो, तो श्वास-रूपी वाष्प पर अपना अधिकार जमा लो ।

आंखें हमारे वश में हैं । हम जब चाहें इन से देखें और जब चाहें इन्हें बन्द कर लें । वागिन्द्रिय की भी यही अवस्था है । परन्तु कान और नाक स्वतंत्र हैं । योगी इन पर भी प्राणायाम-द्वारा अधिकार जमा लेता है । उसकी समाधि में न तो कुवाक्य विघ्न डाल सकते हैं, न दुर्गन्धि इत्यादि ।

इस प्रकार प्राणायाम से त्रिविध शान्ति उपलब्ध होती है । इस क्रिया

को कभी न भूलना चाहिए।

एक बात का ध्यान अवश्य रहे कि प्राणायाम में हठ न हो। जितना सुगमता से हो सके उतना ही अच्छा है। हठ करने से लाभ के स्थान में हानि होगी।

---

## ६—अघमर्षण मंत्राः ।

ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः॥१॥ ओ३म् समुद्रादर्णवादाधिसंवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी।२। ओ३म् सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।

दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथोस्वः ॥३॥

ऋ० म० १० सू० १६२।

अन्वय—ऋतं च सत्यं च अभि-इद्धात् तपसः ओ३म् (परमात्मनः) अधि-अजायत। ततःरात्रि अजायत। ततः अर्णवः समुद्रः (अजायत)।

अर्णवात् समुद्रात् संवत्सरः अधि अजायत। ओम् वशी विश्वस्य मिषतः अहोरात्राणि विदधत्।

ओम् धाता सूर्याचन्द्रमसौ दिवं च पृथिवीं च अन्तरिक्षं अथ उ स्वः यथा-पूर्वं अकल्पयत्।

[ऋतम्] ज्ञान अर्थात् वेद [च] और [सत्यम्] प्रकृति [अभि] सब ओर से [इद्धात्] प्रकाशमान [तपसः ओं] धर्म्म-स्वरूप, ज्ञानवान् परमात्मा से [अधि-अजायत] उत्पन्न हुई [ततः] उसी ज्ञान स्वरूप से [रात्रि] प्रलय [अजायत]

हुई [ततः] उसी से [अर्णवः] बड़ा [समुद्रः] समुद्र अर्थात् आकाश हुआ ॥१

[अर्णवात्] बड़े [समुद्रात्] समुद्र से अर्थात् आकाश के होने पर [संवत्सरः] काल [अधि, अजायत] हुआ। [अहोरात्राणि] दिन रात [विश्वस्य] सारे जगत् के [वशी उ] वश में रखने वाले उ ने [मिषतः] स्वभावतः [विदधत्] बनाए [सूर्य्याचन्द्रमसौ] सूर्य्य और चन्द्रमा [धाता उ] उत्पादक परमात्मा ने [यथापूर्वम्] पहिले की भांति [अकल्पयत्] बनाए [दिवम्] प्रकाशमान लोकों को रचा और [पृथिवीम्] पृथिवी [च] और [अन्तरिक्षम्] रिक्त स्थान अर्थात् आकाश Space को [अथ] और [स्वः] सुखधाम या चमकते मण्डल भी रचे।

इन तीन मन्त्रों में अनादि पदार्थों का वर्णन आया है। पहिले "ऋत" ज्ञान को और "सत्य" प्रकृति को लिया है। ज्ञान प्रकृति का गुण नहीं, अतः "ऋत" शब्द से जीव की ओर सङ्केत समझना चाहिए। साथ २ निमित्त कारण परमात्मा को भी बता दिया है।

संसार में सार क्या है? यह अतिगूढ़ प्रश्न है। प्रकृतिवादी केवल प्रकृति का अस्तित्व मानते हैं। प्रकृति के नाना रूप प्रतिक्षण हमारी आंखों के सामने आते रहते हैं। कहीं सूर्य्य की तीखी चितवन, कहीं आकाश का नीला आंचल, कहीं तारों की सुहावनी द्युति और कहीं चन्द्र की सुन्दर ज्योति। दूर क्यों जाओ, हमारे रहने के भवन और हमारी अपनी देह यह सब उस छबीली नटी प्रकृति ही के अद्भुत नाट्य हैं।

इस बहुरूपी की कहीं स्थिति नहीं। जो पदार्थ जैसा आज है वैसा कल न होगा। एक दिन बीज, दूसरे दिन अंकुर फिर विशाल वृक्ष। कौन कहे यह वस्तु वास्तव में एक है? ज्योतिषी कहते हैं कि सूर्य्य प्रतिदिन पतला हो रहा है; इस के परमाणु इस से अलग होते जाते हैं और प्रकाश मन्द पड़ता जाता है। यही अवस्था अन्य मण्डलों और लोकों की भी है। जिस गति से संसार के पदार्थ क्षण क्षण में क्षीण होते हैं उस से अनुमान किया जाता है कि एक दिन ये इतने सूक्ष्म हो जाएंगे कि अदृश्य होंगे। वह रूप सब पदार्थों का सम होगा। जैसे मिट्टी से बने बर्तन आज भिन्न २ दीखते हैं, परन्तु कुम्हार जानता है कि एक समय सब मिट्टी थे, इसी प्रकार बहुरूपी प्रकृति भी प्रलय–काल में एक-रूपी हो

जाती है। उसी अवस्था को इन मन्त्रों में "रात्रि" कहा है। क्योंकि उस समय प्रकाश नहीं होता और चीज़ों का वैविध्य न होने से कुछ भी पहिचाना नहीं जाता। प्रकृति की इस अवस्था को "कारण दशा" कहते हैं।

जब परमाणुओं के संयोग से सृष्टि होती है तो यह प्रकृति 'कार्य' हो जाती है। आज कल "कार्य" है। जड़ प्रकृति स्वयं कोई कार्य नहीं कर सकती। वैज्ञानिक एक दूसरा पदार्थ ' Force " अर्थात् "शक्ति" मानते हैं। हम पूछते हैं, शक्ति चेतन है या जड़? जड़ हो तो उस के कार्य्य नियमित न होंगे। अन्धेर नगरी के राजा की भान्ति न समय देखा जायगा न अधिकार। कोई अवस्था, कोई क्रम,

कोई पद्धति न होगी । परन्तु वास्तव में संसार में अन्धेर नहीं । ब्रह्माण्ड का अणु २ अपनी नियन्त्री शक्ति को बुद्धिमती बताता है । उस शक्ति के लिए यहां शब्द " अभीद्धात् " आया है, अर्थात् सर्वथा चेतन और " तपसः " ज्ञान-स्वरूप । वही संसार का निमित्त कारण है । वही प्रकृति की विकृति करता और फिर उसे समावस्था में ले जाता है * ।

प्रकृति कब से है ? परमात्मा कब से है ? जीव कब से है ? ये शङ्काएं विचार-शीलों को सदैव होती आई हैं ।

* न समता से विषमता स्वयं हो सकी है न विषमता से समता । नियन्ता के न होने में न प्रलय का नियम होगा न सृष्टि का ।

वेद इन तीनों पदार्थों को अनादि मानता है । विज्ञान तथा अनुभव भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं । यदि अब कोई चीज़ नूतन नहीं होती तो पहिले क्योंकर नूतनता की कल्पना करें? सृष्टि का प्रवाह कब से चला ? यह परमात्मा को कैसे सूझी कि "समरूपा" को "असमरूपा" करे, इस का उत्तर "यथापूर्वम्" और 'मिषतः' शब्दों में दिया है । आधुनिक सृष्टि परमात्मा का पहिला परीक्षण नहीं, जो सफल हुआ । किन्तु ऐसे ही अनादि काल से अनेक चक्र होते आए हैं । जैसे परमात्मा अनादि, उसी प्रकार उस का स्वभाव स्रष्टृत्व भी अनादि । जब वह स्रष्टा अथवा प्रलयकर्ता न था, तब वह परमात्मा न था । अतः यह

प्रलय और सृष्टि की शृंखला पहिले से ही चली आई तथा आगे भी चली जाएगी। यह वह सूत्र है जो न आरम्भ हुआ न समाप्त होगा। अन्य जितने पदार्थ इन मन्त्रों में कहे हैं वे प्रकृति के कार्य्य हैं उन के साथ और भी सारे ब्रह्माण्ड को सम्मिलित करो।

कई टीकाकार इन मन्त्रों में हेर फेर कर सृष्टि का क्रम बताते हैं कि अमुक पदार्थ पहिले हुआ, अमुक पीछे। हमारे विचार में यह कल्पना अशुद्ध है। अर्णव समुद्र अर्थात् आकाश और संवत्सर अर्थात् काल ( Space and Time ) सब से पूर्व ठीक हैं, क्योंकि इन ही में संसार विचरता है। आगे सर्वत्र क्रम नहीं बनता। इन मन्त्रों में परमात्मा को सृष्टिकर्ता तथा ( वशी ) नियन्ता

बताकर सृष्टि की सामग्री ( प्रकृति ), और जीव के अनादित्व पर बल दिया है। और प्रलय तथा सृष्टि के प्रवाह का अपूर्व वर्णन किया है।

---

# अघमर्षण क्या ?

इन मन्त्रों का नाम अघमर्षण मन्त्र है। अघ का अर्थ है पाप, और मर्षण दूर करना, अर्थात् पाप को दूर करना। स्वामी जी का मत है कि जब २ पाप मन में आए. इन मन्त्रों का ध्यान करो, पाप हट जाएगा। इस में हेतु क्या ? पाप का मूल केवल अपने स्वरूप तथा स्थिति का अज्ञान है। कोई तो अपने आप को परमात्मा का बड़ा भाई सम-

झता है और अन्य प्राणियों पर अत्याचार करना उस ज्येष्ठ-भ्रातृत्व का स्वाभाविक फल जानता है । वह अपनी वास्तविक स्थिति से ऊंचा उड़ा । यह उक्त अज्ञान का एक रूप है, जिसे अभिमान कहते हैं । एक और महाशय अपना इतना भी अस्तित्व नहीं जानता, जितना जड़ प्रकृति का । वह रींगता है और गिड़गिड़ाता है । आत्म-विश्वास उस में नहीं, काम करने का उत्साह उस से दूर है । यह उक्त अज्ञान का दूसरा रूप है, जिस का लौकिक नाम 'भय' है । बस संसार में पाप जितना होता है, इन्हीं दो कुत्सित कारणों से होता है । जिस ने इन दो का नाश किया, वह पापों से छूटा । रोग का नाश

मूल के नाश से होता है। भला! जिस ने इन मन्त्रों में वर्णित ईश्वरीय महिमा का चिन्तन एक वार भी कर लिया, वह अभिमान क्या ख़ाक करेगा? जहां दरिया है वहां बिन्दु क्या? लाखों करोड़ों जीव जिस आत्मा के आगे हाथ बांधे हैं उस पर एक जीव का दबाव हो? असम्भव है! रहा भय, उस का भी इसी चिन्तन से मूलोच्छेदन होगा। क्योंकि जो परमात्मा हाथी का रक्षक है वही च्यूंटी का भी रक्षक है। अत्याचारियों तथा बलवानों के शिर पर उस शासक का दण्ड और दबाव है। तनिक आगे विचारो, तो कर्म और फल के परामर्श से आवागमन का सिद्धान्त अवगत होगा और वही आधार है पवित्राचरण का।

सन्ध्या में अघमर्षण इसलिए आया कि इस पर रोज़ ध्यान दिया जाय और पापों को दूर ही दूर रक्खा जाय ।

---

## ७—आचमन दूसरी वार ।

इस स्थल पर " शन्नोदेवीः " मन्त्र से फिर तीन वार आचमन करो । कारण यह है कि अघमर्षण से पूर्व प्राणायाम किया है । प्राणायाम से कण्ठ, हृदय, उदर और फेफड़ा गर्म हो जाते हैं, और शुष्कता का अनुभव होता है । सूखे कण्ठ को तर करने तथा व्याकुल हृदय को शान्ति देने के लिए आचमन अत्यन्त लाभकर है । प्राणायाम और आचमन में अघमर्षण का अन्तर इसलिए रक्खा कि उष्ण अंगों पर तत्काल पानी

डालना हानिकारक है। पथिक थका मांदा मार्ग से आए, तो उसे झट ही पानी पीने को नहीं देते, न अंगों पर ही तत्क्षण जल डालने देते हैं। जैसे पथिक पहले कुछ विश्राम करता है वैसे ही हम भी करते हैं।

यों भी सन्ध्या में कई जगहों पर पानी पीने की आवश्यता होती है जिस से मन्त्रोच्चारण में सुविधा हो। यदि ऐसे स्थल नियत हों तो व्यवस्था रहती है, इकट्ठी सन्ध्या करते हुए वैविध्य नहीं होता, और डेढ़ २ ईंट का अलग २ मन्दिर होने से फूट नहीं पड़ती। जातीयता में ऐसे नियम बहुत लाभकारी हैं।

मन्त्र का अर्थ हो चुका है।

हम पाठकों के सन्मुख अपना एक वार का अनुभव रखते हैं। सम्भव है उस का कुछ अंश उपासक वृन्द के हृदय में

आजाए और वह आचमन के प्रयोजन को भली प्रकार जान सकें ।

मरी से पश्चिम की ओर कोई १॥ ( डेढ़ ) मील की दूरी पर फेरूमल की बावली है । सड़क से दक्षिण को एक निम्न स्थान में, जहां पहुंचने के लिए कोई मील भर नीचे उतरना पड़ता है, और मार्ग में छोटे बड़े अनेक वृक्ष तथा पौधे आते हैं, यह बावली स्थित है । पथिक की दृष्टि यदि अकस्मात् पड़े भी तो नीचे खड़ा मनुष्य छोटा दीखता है । ऐसा प्रतीत होता है कि वहां, पार्थिव नहीं, कोई और सृष्टि होगी । हम स्नानार्थ उस बावली पर गए, व्यायाम किया, नहाए, धोए और सन्ध्या के लिए एक पत्थर को आसन बनाया । पत्थर ठण्डा और स्वच्छ है । उसके दोनों ओर झरने

का निर्मल पानी मधुर आलाप करता बहा जाता है। वायु शीतल और सुहावनी, धूप अति पवित्र और मनोहर। चारों ओर हरे चील के वृक्षों की गोलाकार पंक्तियां। उनका क्रम ऐसा कि मानो किसी कमाण्डर ने अभी फ़ालिन कराया है। मूल से कई फीट ऊपर तक नङ्गे। फिर नोकीले तीलों के आकार के पत्तों से ढके। पत्तों का घेरा भी पहिले चौड़ा फिर शनैः २ संकुचित होता गया है, यहां तक कि अन्त में एक नोक मात्र रह गई है। इस हरी प्राकार से नीचे पहाड़ के ढलान पर सीढ़ियों के रूप में क्षेत्र बोए हुए। सूर्य की किरणें पानी के कणों में विचलित होती हुई सातों रङ्गों के विचित्र सम्मेलन से तल पर के घास को मखमल और कमख़ाब की चमक देती

हैं । उस पर कोई बादल का टुकड़ा अटका हुआ अति सूक्ष्म मलमल ओढे बालक की भांति घुटने टेक २ कर पर्वत पर चढ़ा आता है ।

प्रकृति-माता के बालक ! तू बहुत प्रसन्न है । आ पाठक ! बालक सा सरल चित्त बना और मेरे साथ सन्ध्या कर ।

"शंयोरभिस्रवन्तु नः" । अब ज्ञात हुआ इस में क्या रहस्य है । वायु की चपेट आई और शरीर को शान्ति दे गई । पक्षी चहचहाया, कान ने आनन्द पाया । वृक्षों पर दृष्टि पड़ी और आंखों को अञ्जन मिला । जल शान्ति-मय है, वायु शान्ति-मय है, पृथिवी शान्ति-मय है, मैं शान्ति-मय हूं । मुख क्या, समस्त काया आचमन कर रही है, और तृप्त नहीं होती । रोम २ से शान्ति देह के अन्दर चूती है ।

आत्मा ने द्वार खोल दिए, परम-शान्ति का प्रवाह हुआ।

आनन्द कहां से चूता है ? वह शान्ति का स्रोत, सकल आनन्द का निकास, जड़ चेतन का आत्मा, घट २ में व्यापक, आत्मा की दिव्य-चक्षु द्वारा देखा गया। कह वाणि ! उसी को कह ! "शन्नो देवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये" । अरी शान्ति में निमग्न ! कुछ कहने की शक्ति शेष है ?।

—o—

## ८—गुरुमन्त्र दूसरी वार।

आचमन के पश्चात् फिर गुरुमन्त्र का ध्यान करें।

—o—

## ६—मनसा परिक्रमा।

ओ३म् प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जंभे दध्मः॥१॥

अथर्व० कां० ३० सू० २८ मं० १॥

अन्वयः–प्राची (प्राच्याः) दिक् (दिशः) अग्निः अधिपतिः असितः रक्षिता (अस्ति, तस्य) आदित्याः इषवः (सन्ति) तेभ्यः अधिपतिभ्यः रक्षितृभ्यः नमः ३, एभ्यः इषुभ्य नमः २ अस्तु। यः अस्मान् द्वेष्टि यं (च) वयं द्विष्मः तं वः जंभे दध्मः।

पदार्थः—(प्राची, प्राच्याः) पूर्व अथवा जिस ओर मुख हो उस (दिक्-दिशः) दिशा का (अग्निः) प्रकाश-स्वरूप ओ३म् (अधिपतिः) राजा है। सो (असितः) बन्धन-रहित (रक्षिता) रक्षक है। उस के (आदित्याः) सूर्य की किरणें अथवा अठतालिस वर्ष के ब्रह्मचारी (इषवः) तीर वा शक्तियां हैं। (तेभ्यः) उन (अधिपतिभ्यः) अधिपति (रक्षितृभ्यः) रक्षक के लिए [बहुवचनमादरार्थम्] (नमः ३) वार२ नमस्कार हो। (एभ्यः) इन (इषुभ्यः) बाणों अथवा शक्तियों के लिए (नमः २) वार २ नमस्कार (अस्तु) हो। (यः) जो (अस्मान्) हम मनुष्यमात्र से (द्वेष्टि) द्वेष करता है, (यम्) जिससे (वयं) हम (द्विष्मः) द्वेष करते हैं, (तं) उस को (वः) आप के (जंभे)

न्याय रूप जबड़े में (दध्मः) धरते हैं ॥१॥

ओ३म् दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपति-
स्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः ।
तेभ्यो...दध्मः ॥२॥

अथर्व० कां० ३० सू० २७.मं० २ ॥

अन्वयः—दक्षिणा ( दक्षिणस्याः ) दिक् ( दिशः ) इन्द्रः ओ३म् अधिपतिः तिरश्चिराजिः (तिरश्चिराजेः) रक्षिता (अस्ति, तस्य ) पितरः इषवः ( सन्ति ) । तेभ्यः० पूर्ववत् ॥

शब्दार्थः—( दक्षिणा—दक्षिणस्याः ) दक्षिण अथवा दाहिने हाथ की ( दिक्-दिशः ) दिशा का ( इन्द्रः ) ऐश्वर्य्यवान् ओ३म् (अधिपतिः) राजा (तिरश्चिराजिः-जेः ) पृष्ठरहित प्राणियों के समूह का ( रक्षिता ) रक्षक है । उस के ( पितरः )

विद्वान् लोग ( इषवः ) बाण वा शक्तियां हैं। आगे पूर्ववत् ॥ २ ॥

ओ३म् प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः । तेभ्यो… दध्मः ॥ ३ ॥

अथर्व० कां० ३० सू० २७ मं ३ ॥

अन्वयः—प्रतीची ( प्रतीच्याः ) दिक् (दिशः) वरुणः अधिपतिः पृदाकुः (पृदाकोः) रक्षिता। ( तस्य ) अन्नम् इषवः। ( शिष्टं पूर्ववत् ) ॥

शब्दार्थः—( प्रतीची–च्याः ) पश्चिम अथवा पीठ की ओर की ( दिक्–शः ) दिशा का ( वरुणः ) श्रेष्ठ ( अधिपतिः ) राजा ( पृदाकुः–कोः ) पृष्ठधारी प्राणी का ( रक्षिता ) रक्षक है, उस की ( इषवः ) शक्तियां ( अन्नम् ) अन्न हैं। आगे पूर्व-

वत् ॥ ३ ॥

ओ३म् उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिता शनिरिषवः । तेभ्यो ... दध्मः ॥४॥

अन्वयः—उदीची ( उदीच्याः ) दिक् ( दिशः ) सोमः अधिपतिः स्वजः रक्षिता । ( तस्य ) अशनिः इषवः । ( शिष्टं पूर्ववत् ) ॥

पदार्थः—( उदीची—च्याः ) बाएं हाथ का अथवा उत्तर ( दिक्-शः ) दिशा का ( सोमः ) शान्ति-स्वरूप ओ३म् ( अधि-पतिः ) राजा ( स्वजः ) ( स्वस्मात् जायते भवति इति स्वजः स्वयंभूरीश्वरः, अथवा सुष्ठु प्रकारेण अजः अजन्मा इति स्वजः सुष्ठु अजन्मा ) स्वयंभू अथवा भली प्रकार अजन्मा ( रक्षिता ) रक्षक है, उस की ( अशनिः ) बिजली ( इषवः ) बाण

स्थानी हैं। आगे पूर्ववत् ॥४॥

ओ३म् ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो……दध्मः ॥५॥

अथर्व० कां सू० २७ मं० ५॥

अन्वयः—ध्रुवा ( ध्रुवायाः ) दिक् ( दिशः ) विष्णुः अधिपतिः रक्षिता ( अस्ति, तस्य ) कल्माषग्रीवः (कल्माषग्रीवाः) वीरुधः इषवः। शिष्टं गतम्।

शब्दार्थः—(ध्रुवायाः) नीचे की (दिक्-दिशः)दिशा का(विष्णुः)सर्वव्यापक(अधिपतिः) राजा ओ३म् ( रक्षिता ) रक्षक है। उसके ( कल्माषग्रीवः-वाः ) हरी गर्दन अर्थात् शाखाओं वाले ( वीरुधः ) पेड़ (इषवः) बाणस्थानी हैं। आगे पूर्ववत् ॥५॥

ओ३म् ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः । तेभ्यो... दध्मः ॥ ६ ॥

अथर्व० कां ३० सू० २७ मं० ६ ॥

अन्वयः—ऊर्ध्वा (ऊर्ध्वायाः) दिक् (दिशः) बृहस्पतिः अधिपतिः श्वित्रः रक्षिता (अस्ति, तस्य) वर्षं इषवः शिष्टं पूर्ववत् ।

शब्दार्थः—(ऊर्ध्वा-ध्वायाः) ऊपर की (दिक्, शः) दिशा का (बृहस्पतिः) बड़ों का अथवा वाणी का स्वामी (श्वित्रः) पवित्र (रक्षिता) रक्षक है । उसकी (वर्षं) वर्षा (इषवः) बाणस्थानी है । आगे पूर्व के सदृश ॥ ६ ॥

मनसा परिक्रमा का अर्थ मन द्वारा चक्कर काटना है । जिस २ दिशा का

वर्णन उपरिस्थ मन्त्रों में हुआ, उस का चिन्तन करते हुए परमात्मा की सर्व व्यापकता का निश्चय करना चाहिये।

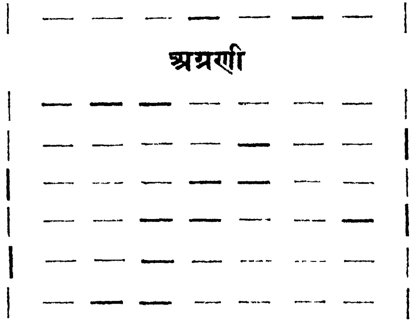
पौराणिक भाई सन्ध्या में एक स्थल पर शरीर द्वारा चक्र काटते हैं। मुख को पहिले पूर्व, फिर दक्षिण इत्यादि दिशाओं में फेर कर पूर्ण परिक्रमा करते हैं। चार दिशाओं में ऐसा हो सक्ता है। ऊपर नीचे के लिए कलाबाज़ी कर लिया करें तो क्रिया की पूर्ण सिद्धि होगी।

आर्य्यसमाज में कहीं २ इस बात पर बल दिया जा रहा है कि सन्ध्या में पूर्वाभिमुख बैठो। इस में कुछ युक्तियां भी दी जाती हैं। जैसे उदय होते सूर्य का दर्शन जिस से आत्मिक जीवन सुवर्णमय होजाता है। परन्तु स्वामी जी ने पञ्च-महायज्ञविधि में प्राची दिशा का अर्थ

पूर्व अथवा वह दिशा जो मुख के सामने हो, किया है । पूर्वाभिमुख सन्ध्या से जो लाभ बताए जाते हैं, वह दूसरी दिशाओं में भी प्राप्त हो सकते हैं । सन्ध्या में दिशा का बन्धन नहीं । विशेषतया जब सन्ध्या समूह में हो तो बैठने का यह नियम नहीं हो सका ।

इसलामी भाई नमाज़ में पश्चिमाभिमुख खड़े होते हैं । पंक्ति के पीछे पंक्ति सुन्दर प्रतीत होती है । आर्य्यों में बैठने के क्रम का निम्न लिखित नियम अच्छा होगा । सामूहिक सन्ध्या में अग्रणी का आसन एक ओर रहना चाहिए, शेष लोगों की एक पंक्ति उसके चारों ओर भवन अथवा स्थान की सीमा पर लग जानी चाहिए । इस से अधिक जो लोग हों, उन की पंक्तियां अग्रणी की ओर मुख किये उसके

सामने लग जायें, तो एक सुन्दर क्रम बन जायगा । यह बात निम्न चित्र से अधिक स्पष्ट होगी ।




स्थान तथा समय के अनुसार क्रम बदला जा सक्ता है । ऐसे ही सामूहिक हवन इत्यादि में भी कोई सुन्दर सा क्रम रखना चाहिए ।

मंत्रों में 'अधिपति' शब्द छः बार दोहराया है । प्रत्येक दिशा का स्वामी

ओ३म् है। उसी को अग्नि, इन्द्र, वरुण सोम, विष्णु और बृहस्पति कहा है। उसी को असित (बन्धन रहित, कालिमा रहित) तथा श्वित्र (पवित्र) कहा है। वही अज है, जन्म मरण के बन्धन में नहीं आता। यह शब्द एक दूसरे की व्याख्या करते हैं।

'अधिपति' शब्द के साथ 'रक्षिता' शब्द दोहरा कर वेद ने यह सचाई प्रतिपादित की है, कि आधिपत्य अर्थात् राज्य का अभिप्राय रक्षा है, अत्याचार तथा बल-प्रदर्शन नहीं। परमात्मा आदर्श राजा हैं। उनके राज्य में अन्याय अथवा स्वार्थ से काम नहीं लिया जाता। सब प्राणियों का हित किया जाता है। राज्य का कर्तव्य प्रजा के प्रति इससे और अच्छा क्या प्रतिपादित होता?

मनुष्य को प्राणियों का राजा कहते हैं। उसका कर्तव्य भी यही है कि सब प्राणियों का पालन करे। प्राणी उसके भक्षण के लिए नहीं, रक्षण के लिए हैं।

परमात्मा की शक्तियां अनन्त हैं। कतिपय शक्तियों के वर्णन से उसकी अतीव शक्तिमत्ता की ओर संकेत है। सूर्य की किरणें प्रकाश देकर जगत की कार्यसिद्धि का अपूर्व साधन हैं। संसार की भट्ठी इन्हीं से गर्म और कार्य-परायण है। वायु तथा आकाश की शुद्धि इन्हीं से होती है। विद्वान् और ब्रह्मचारी जिस जाति में नहीं उसका जीवन पाशविक है। अन्न अनाज को भी कहते हैं, पृथ्वी आदि पदार्थों को भी। विद्युत् जगत की ज्योति है। इसका प्रसरण अणु २ में है। संसार की धर्त्री शक्तियों

में विद्युत् का स्थान बड़ा है। बेल बूटे और वर्षा, आत्मिक तथा शारीरिक शांति के पुंज हैं।

इन पदार्थों के प्रयोगों और उपयोगों पर कई पुस्तक लिखे जाएं तो भी लेख अपूर्ण रहेगा। हमारा कर्तव्य यह है कि हम दाता के दान से पूर्ण लाभ उठाएं।

कई टीकाकार यह यत्न करते हैं कि जिस २ दिशा के साथ प्रभु के जिस नाम और शक्ति का उल्लेख हुआ है, उस का सम्बन्ध उस दिशा से जोड़ें। कवियों की कल्पना में यह आनन्दप्रद रहस्य होता है। परमात्मा आदि-कवि हैं। उनकी रचना भी आनन्द से शून्य नहीं। परन्तु जिन्होंने वेद का पाठ किया है वह जानते हैं कि प्रत्येक स्थान में यह बात नहीं पाई जाती। लौकिक कविता में भी

ऐसी रचना तब तक सुहाती है जब इसका प्रयोग कहीं २ आए । अति हुई और काम विगड़ा ।

परमात्मा के किसी नाम विशेष का सम्बन्ध किसी दिशा विशेष से नहीं । न ही उसकी शक्तियों का कार्यक्षेत्र दिशाओं द्वारा परिमित है । वर्षा ऊपर से होती है और बेल बूटे नीचे से उगते हैं । विद्वानों को दाहिने हाथ बिठाओ, यह सभ्यता है । आदित्य अग्रणी होते हैं ।

इस सूक्त के भौतिक अर्थ करने में यह व्यवस्था काम दे सकी है ।

"ओ३म् भूः पुनातु शिरसि" इत्यादि वाक्यों के अर्थ में भी "भूः" को "शिरः" के साथ मिलाने का यत्न किया जाता है । सो कविता का बिगाड़ना है । ऐसी खैंच तान की यहां आवश्यकता

नहीं ।

सर्व-व्यापक के गुण भी सर्व-व्यापी हैं, शक्तियां भी ।

जब मनुष्य के हृदय में यह भाव उमड़ा, कि देखो, वह अधिपति किस तरह भान्ति २ के बाणों से हमारी रखवाली करता है तो कृतज्ञता के भार से जीव दब गया । रहा न गया, बलिहारी २ कहकर परमात्म-देव के ऊपर न्योछावर होगया, इधर नमः २ कहा और उधर परिक्रमा द्वारा उस आनन्द-मद का मतवारा हुआ ।

याद आया कि हमारे तो वैरी भी हैं । हम उन से विरोध करते हैं, वह हम से । यहां यह व्रत लिया जा रहा है कि रक्षक की प्रजा का रक्षण करेंगे । ध्यान आया कि हम क्या हैं, जो किसी द्वेष का

बदला लेंगे। परमात्मा का न्याय अटल है। निर्णय के लिये उसी की शरण ली।

साथ रख वासनों में खट २ होगी। कभी २ किसी विषय पर वैपत्त्य हो जाना साधारण बात है। जीते प्राणियों में वैमनस्य नैसर्गिक है। बात यह है कि मत की विभिन्नता में भ्रातृभाव न छूटे। मां-जाए भाई भी एक दूसरे को मारते हैं, परन्तु माता की गोदी में फिर एक हो जाते हैं। ऐसे ही व्यवहार का प्रण इन मन्त्रों में किया गया है।

महाभारत के युद्ध की विधि यही थी। राजपूतों के समर का नियम यही था। दिन को लड़े, रात को भोजन इकट्ठा किया। सन्ध्या समय विरोध कैसा? भीष्म से उपदेश लेने पाण्डव ही तो गये थे।

# ६. उपस्थान।

'उपस्थान' का अर्थ है निकट बैठना। यही अर्थ 'उपासना' शब्द का है। इन शब्दों से विशेषतया परमात्मा के निकट होना ग्रहण किया जाता है। सन्ध्या का दूसरा नाम सन्ध्योपासन भी है, जिस से स्पष्टतया सिद्ध है कि सन्ध्या का मुख्य भाग तथा उद्देश्य उपासना है। श्रीस्वामी जी 'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' में उपासना की व्याख्या यों करते हैं—

'जैसे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं, वैसे अपने करना, ईश्वर को सर्व-व्यापक, अपने आप को व्याप्य जान के, ईश्वर के समीप हम, और हमारे समीप ईश्वर है, ऐसा निश्चय योगाभ्यास से साक्षात्कार करना 'उपा-

सना' कहाती है। इसका फल ज्ञान की उन्नति आदि है।'

इन्हीं शब्दों से आगे आने वाले मन्त्रों का महत्व समझ लेना चाहिये । संध्या का सार अब आएगा 'सम्यक्तया ध्यान' आगे लगेगा। पिछले मन्त्र सब इसी भाग के लिये तय्यारियां मात्र थे । अब तक यम नियम का प्रतिपादन हुआ। अब समाधि आई है । आनन्द तब है कि इस स्थल पर पहुंचते ही वस्तुतः समाधि की अवस्था हो।

---

## १०. उपस्थान मन्त्र (१)

ओं उद्वयं तमसस्परि
स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।

देवं देवत्रा सूर्यमगन्म-
ज्योतिरुत्तमम् ॥

यजु० अ० १८। मन्त्र २४॥

अन्वयः—वयं तमसः परि ( पृथक् ) स्वः देवत्रा ( देवेषु ) देवं उत्तरं सूर्य्यं ज्योतिः पश्यन्तः उत् अगन्म ।

( वयं ) हम ( तमसस्परि ) अन्धकार अर्थात् अशान्ति और पतन से दूर (स्वः) प्रकाश तथा सुख-स्वरूप (देवत्रा) प्रकाशमानों में ( देवं ) अति प्रकाशमान ( उत्तरं ) प्रलय के पश्चात् रहने वाले ( सूर्य्यं ) सर्व-व्यापक ( उत्तमं ) महान् (ज्योतिः) प्रकाश को (पश्यन्तः) देखते हुए ( उत् अगन्म ) भली भांति प्राप्त हों ।

अब उपासक उस सीढी पर आया जिस के लिये जन्मकाल से परिश्रम था ।

उस के हृदय में शुभ इच्छा स्फुरित हुई। कैसी मंगलमयी, कैसी सौभाग्य-भरी इच्छा! कि अपने प्रियतम परमपिता को एक दृष्टि से देखूं और उसकी गोद में समा जाऊं। हैं? देखूं? देखना दूरस्थ पदार्थों का होता है। यदि अंजन को देखना हो तो उसे आंख में मत लगाओ। अपनी पुतली जो आंख के अन्दर है, आज तक किसी ने नहीं देखी। वह परम-प्यारा, पुतली क्या? उसकी सूक्ष्म दृष्टि के भी अन्दर समाया हुआ है। फिर उसे देखें कैसे? हां भौतिक पदार्थों के देखने को भौतिक आंख और उसे दूरी की भी आवश्यकता है। परमात्मा अखण्ड है, वह बाह्य आंखों से देखा नहीं जाता, उसका दिव्य चक्षु अर्थात् आत्मा के अनुभव द्वारा साक्षात्कार

होता है । इसी प्रयोजन से इस मन्त्र में 'पश्यन्तः' आया है। 'अगन्म' उस से दूसरी क्रिया नहीं, किन्तु उस निरन्तर विद्यमान, दूर तथा निकट एक रस रहने वाले का देखना और मिलना, छाती से लगाना और गले से लपटना-लो फिर व्यवहार की बातें होने लगीं-एक हैं ।

वह छबीला वह सजीला, वह महान् मनोहर, वह परम प्रभाकर है कैसा ? मन्त्र में उसे 'तमसस्परि' कहा है अर्थात् अन्धकार-रहित, अज्ञान से दूर अज्ञानियों को प्राप्त न होने वाला । 'स्वः' 'देवत्रा देवं' 'उत्तमं ज्योतिः' अर्थात् पूर्ण प्रकाश । तो क्या वह रात्रि के समय लुप्त होता है और मध्यान्ह में प्रदीप्त हो चमकता है ? दीपक की बत्ती के ऊपर

तो विद्यमान है परन्तु मूल में नहीं? भोले भाई! भौतिक संसार में निमज्जित रहने वाले प्राणी! 'उत्तमं ज्योतिः' न सूर्य्य का प्रकाश है, न विद्युत् का आभास। न प्रभात की रँगीली छटा है, न सायंकाल की लाल उषा। वह वेलाओं से ऊपर है और वेलायें उस से प्रकाशित हैं। वह मण्डलों का स्वामी है और मण्डल उस से व्याप्त हैं। उस का प्रकाश धूप तथा परछाईं, शशि तथा निशि दोनों में एक-रस एक रूप से दीप्तिमान्! उपासकों के हृदयों द्वारा अनुभूत! नास्तिक और मूर्खों से लुप्त! इस प्रकाश का दूसरा नाम आनन्द है, जो परमात्मा का स्वरूप है। उस के मिलने की इच्छा और फिर साधन-युक्त इच्छा! सफलता

इसके पांव चूमेगी । कृतकार्यता अगुवाई करेगी ।

## ११. उपस्थान मन्त्र (२)

ओं उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ २ ॥

ऋ० मण्डल १ । सू० ५० मं० १ ॥

अन्वयः—उदुत्यं जातवेदसं देवं सूर्यं विश्वाय ( विश्वेषां ) दृशे ( द्रष्टुं ) केतवः उद्वहन्ति ।

पदार्थः—( त्यं ) उस ( जातवेदसं ) सकल ब्रह्मांड की सुध रखने वाले यद्वा कार्य कारण की विज्ञप्ति कराने वाले ( देवं ) प्रकाश स्वरूप ( सूर्यं ) सर्व-व्यापक ( ओ३म् ) को ( विश्वाय ) सब के ( दृशे ) देखने के लिये ( केतवः )

झण्डियां ( उत्, वहन्ति ) हिलती हैं ।

मुमुक्षु इच्छा-रूपी यान पर चढ़ चुका। उसे मार्ग की आवश्यकता है । नेता की खोज में मतवारा फिरता है । मोक्षधाम पहुंचना है, कहां जाए ? दर्शनामृत के पिपासो ! तू चिन्ता न कर । तू साधनों का टिकट लेकर यान में आया है । तुझे पहुंचाने का उत्तरदातृत्व औरों का है। गाड़ी नियत स्थान को जा रही है ।

वह देख ! सीटी बजी । घण्टी हुई ! झण्डी हिली ! गाड़ी मार्ग में है । कौन सा मार्ग ! वेद का । एक २ ऋचा को पढ़ । परमात्मा की द्योतिका है ।

कोई उत्सव है ? घर, बार, गली, बाज़ार, नीचे, ऊपर, अन्दर, बाहर झण्डियां ही झण्डियां हैं । इनके संकेत को समझ और इन के पीछे जा । तारों की दीपमाला किसके स्वागत के लिये है?

केवल आज नहीं, रोज़। प्रभात की छटा किस वैज्ञानिक का आविष्कार है? चन्द्र-कला और सूर्य-प्रभा किस शिल्पी का शिल्प है? समुद्र गला फाड़ २ कर चिल्लाता है। बादल गरज २ कर घोषणा करते हैं। किस की? जहां पत्ती पर न मारे? पशु पग न हिलाएं। न कौओं की काएं २, न पत्तों की साएं २। वहांभी तो निःशब्द प्रकृति मौन-भाषा में स्व-स्वामी का स्मरण कराती है। तू न देखे और न सुने तो अपराध किसका? देखने वाली आंख खोल। मौन-भाषा में नाद होता है—'रंगी के रंग'।

## १२. उपस्थान मंत्र (३)।

ओं चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षु-

मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष ँ सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥ ३ ॥

अन्वयः—चित्रं देवानां ( देवान् ) उत् अगात् ( स ) अनीकं ( अस्ति )। मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः चक्षुः ( अस्ति ) । द्यावा पृथिवी ( द्यावापृथिव्या ) अंतरिक्षं आ आप्राः । जगतः तस्थुषः च सूर्य्यः आत्मा अस्ति ) । स्वाहा ।

पदार्थः-(चित्रं) विचित्र (देवानां) प्रकाशमानों और दिव्य स्वभाव युक्तों में ( उत् अगात् ) भली प्रकार प्रकट ( अनीकं ) बल-स्वरूप (मित्रस्य ) हितकारियों वा सूर्य का ( वरुणस्य ) श्रेष्ठ पुरुषों वा जल का ( अग्नेः ) ज्ञानियों वा अग्नि का(चक्षुः) मार्ग-दर्शक वा द्रष्टा (द्यावा पृथिवी) प्रकाश

युक्त लोकों और प्रकाश शून्य विस्तृत लोकों (अन्तरिक्ष) आकाश में (आप्रा) व्यापक (जगतः) चर अर्थात् चलने वालों (च) और (तस्थुषः) न चलने वाले जड़ पदार्थों का (आत्मा) आत्मा और (सूर्य्यः) व्यापक है। (स्वाहा) यह वाणी अति सुन्दर है अथवा यह कामना पूर्ण हुई।

मुमुक्षु मोक्ष-धाम में है। अभी देखा था, उसे इच्छा थी। परन्तु साधन-युक्त इच्छा शक्ति-शालिनी होती है। वही इच्छा सफलता में परिणत हुई।

वेद-मार्ग निकल आया। संसार के एक २ अणु ने झंडी का काम दिया। और पथिक वहां पहुंचा, जहां जाना अभीष्ट था। उस जगह का अनुभव भी सुन लो।

कहां वह प्रकृति-मय असत् जगत् ! कहां आत्मिक प्रभा के कौतुकमय चमत्कार ! वहां कलह, यहां शांति । वह तमः यहां सत् । वहां वैर, यहां प्रेम । मुमुक्षु चकित है । विवश मुख से निकलता है, "चित्रं" ! और कोई वाक्य ही नहीं, जिसमें, जो देखा है, दिखाये ।

आज सकल संसार दिव्य है । क्योंकि दिव्य दृष्टि से देखा गया । वस्तु २ में परम-देव की झलक ! अणु २ में विभु ईश की चमक ! वसन्त ऋतु में हरे वृक्ष भी पीले दीखते हैं । हरे चश्मे में आकाश भी हरा, पृथिवी भी हरी, धूप भी हरी और छाया भी हरी । कल यही जल था, उसकी उमड से कांपे जाते थे । यही अग्नि थी, उसकी लपट से कलेजा थर्राता था । यही सूर्य था जिसकी किरणें आग्नेय

बाण थीं। आज दृष्टि के परिवर्तन से जल सौम्य है, अग्नि पावक और सूर्य ज्योतिः का पुंज। ब्रह्माण्ड ब्रह्म-मय है। व्यापक आकाश उससे व्याप्त है। दृढ़ पृथिवी उसी से सुदृढ़ है। वही तारों की द्युति, वही चन्द्र सूर्य की ज्योति। चलतों में उसकी गति, स्थितों में उसकी स्थिति। वही "नेत्र" होकर अग्नि का मार्ग-दर्शक वही "रस" होकर वरुण (जल) का रस-वर्धक। और वही "तेज" हो कर सूर्य का सविता, वही सर्व-वित्, उपदेशकों का उपदेष्टा। अग्नि को कौन कहता है "ऊपर जा"? और जल को कौन सिखाता है "निम्न स्थल पर बह?" वैज्ञानिक कहेगा, प्रकृति के नियम हैं। साधु! वही तो नियमों का नियामक है।

वास्तविक तत्व से भटकी हुई

आंख ! उस अदृश्य दृश्य को देख ! सांसारिक स्वरों पर मोहित श्रोत्र ! उस अश्रुत की श्रुति को सुन ! अरी अएड बएड बक कर वृथा चलने वाली जिह्वा ! आत्म-नाश न कर, उस परम-पवित्र वाक्य "ओ३म्" का उच्चारण कर और पवित्र हो ! कह ! कह ! फिर कह !

फूलों में तेरी शोभा,
कांटों में तेरा दर्शन ।
बगिया में तुझ को ढूंढूं,
या बन में खोजूं ? भगवन् !

---

## १३-उपस्थान मन्त्र (४)

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्र-

मुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

ऋ० अष्ट० ५ । अ० ५ । व० ११ ।

अन्वयः—तत् चक्षुः देवहितं शुक्रं पुरस्तात् उत् चरत् । शतं शरदः पश्येम शतं शरदः जीवेम, शतं शरदः शृणुयाम, शतं शरदः प्रब्रवाम, शतं शरदः अदीनाः स्याम, शतात् शरदः च भूयः (अपि एवं स्यात्) ।

पदार्थः—(तत्) वह (चक्षुः) सर्व-दृक् (देवहितं) देवों का हितकारी (पुरस्तात्) सृष्टि से पूर्व का अजन्मा निर्विकार (शुक्रं) पूर्ण-बल (उत् चरत्) विचरता था। उस को (पश्येम) देखें (शरदः शतं)

सौ वर्ष अर्थात् बहुत काल तक (शरदः शतं) बहुत काल तक (जीवेम) जीवें। (शरदः शतं) बहुत काल तक (शृणुयाम) सुनें (शरदः शतं) बहुत काल तक (प्रब्रवाम) बोलें (शरदः शतं) बहुत काल तक (अदीनाः स्याम) हम स्वतन्त्र हों, अर्थात् किसी के दीन (मुहताज) न हों (च) और (शरदः शतात्) सौ वर्ष से (भूयः) अधिक भी ऐसा ही हो।

परमात्मा का "चक्षुः" तथा "देवहितं" इत्यादि होना पीछे दिखाया जा चुका है। उपस्थान मन्त्र (१) में "उत्तरं" आया था, यहां "पुरस्तात्" आया है। इस का अर्थ है "जो सृष्टि से पूर्व हो और उस के पश्चात् रहे"। यों तो जीव भी अनादि और अनन्त है, एवं प्रकृति भी। परन्तु भेद यह है कि जहां यह दो भिन्न२ अवस्थाओं में

आते हैं, परमात्मा एक-रूप रहता है। जीव कभी बन्धन में कभी मुक्त; ब्रह्म मुक्त-स्वभाव होने से सदैव मुक्त। प्रकृति कभी कारण कभी कार्य्य। परमात्मा सदैव कारण ( निमित्त )।

ऐसे शुद्ध बुद्ध सर्व-दृक् देवहित के दर्शन से कृतार्थ हो जीव की अभिलाषा है कि यह सुख, यह पियतम के मेल का आनन्द क्षणिक न हो। बहुत काल तक रहे। उस पूर्ण-प्रभ की द्युति आंखों के लिये सदैव दीपक हो। सारे इन्द्रिय स्वस्थ बने रहें। जो देखा जाए, वह जीवन में आये। जो सुना जाए, वह उपदेश बने। आंखों में दृष्टि रहे, कानों में श्रुति रहे। मुख में वाक्, नासिका में प्राण हों। सौ के हों चाहे और भी अधिक के। बुद्धि में वृद्ध हों, शक्ति में युवा और सरलता में

शिशु ( बालक )।

वेद में दीर्घ जीवन की कई वार प्रार्थना की है। जीवन कर्म्ममय हो और उस से लाभ उठाया जाए, तो इस से उत्तम कल्याण की वस्तु और है ही नहीं।

## १५—गुरुमन्त्र तीसरी वार।

आरम्भ में गुरुमन्त्र से शिखा-बन्धन किया था। जैसे मार्जन मन्त्रों में शिर से आरम्भ करके शिर ही पर समाप्ति करते हैं, इसी प्रकार यहां भी जहां से आरम्भ किया था, वहीं फिर पहुंच जाते हैं। अभिप्राय यह कि, सारा चक्र समाप्त हो चुका है। पहिली वार गायत्री द्वारा उपस्थान का आदर्श सामने रक्खा जाता है और अन्य मन्त्रों से उस की प्राप्ति के साधन

प्रयुक्त किये जाते हैं। जब यम नियम तो क्या, उपस्थान भी हो चुका तब वस्तुतः अनुभव होता है कि हम "सवितुर्देवस्य भर्गः" धारण कर रहे हैं। तीनों लोकों में से गुज़र चुके, तीनों वेदों के मन्त्रों का उच्चारण किया, तीनों प्रकार का प्राणायाम किया। कसर कौनसी रही! "भूर्भुवः स्वः" बस सार्थ है। 'भर्गः' अपने अन्दर लेने का फल क्या? यही कि आत्मा में नई तथा उत्तम शक्ति का समावेश हुआ। चुम्बक से लगा हुआ लोहा कुछ समय चुम्बक का गुण धारण करता है। इसी प्रकार परमात्मा के सामीप्य से आत्मा भी वह गुण लेता है, जो "आपः देवी" में है। आगामी काल के लिए उसे सन्मार्ग में प्रेरणा होती है।

# १६—नमस्कार मन्त्र ।

ओ३म् नमः शम्भवाय च । मयोभवाय च । नमः शंकराय च मयस्कराय च । नमः शिवाय च । शिवतराय च ॥

यजु० अ० १६ । मं० ४१ ॥

( शम्भवाय ) कल्याण-स्वरूप ( च ( मयोभवाय ) सुख-स्वरूप ( शङ्कराय ) कल्याणकारी ( च ) और (मयस्कराय) सुखकारी ( शिवाय ) आनन्ददाता (च) और ( शिवतराय ) अति आनन्ददाता ओ३म् के लिए ( नमः ३ ) अनेक वार प्रणाम हो ।

समाधि से उठने से पूर्व परमात्मा को नमस्कार करते हैं, यह शिष्टाचार भी है,

भक्ति भी। परमात्मा शम्भु हैं, शङ्कर हैं, शिव हैं, अर्थात् प्रथम तो वह स्वयं शान्ति का भण्डार है, फिर जो उस की शरण लेते हैं, उन्हें त्रिविध तापों से शान्त करता है। वही वास्तविक सुख का दाता है। कैसी उत्तम शिक्षा मिली! यदि शङ्कर बनना चाहो तो पहिले शम्भु बनो। जो स्वयं चिड़चिड़े हैं, वे दूसरों का क्रोध नहीं हर सकते, जो स्वयं भयभीत हैं, वे औरों के लिए अभय प्रदान क्या करेंगे? पहिले आप शान्त बनो फिर औरों को शान्ति दो। परमात्मा व्रत-पति हैं, उसके संसर्ग का फल यही है कि हम व्रतों से स्खलित न हों।

शान्तिमय पितः! नमस्ते!! हमारी
बार २ नमस्ते!!!

ओं शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

**हमें त्रिविध शान्ति प्रदान करो।**

# भक्तिमार्ग की सुन्दर पुस्तकें

**भक्ति-दर्पण**-(गुटका सुनहरी जिल्द) यह गुटका हर समय प्रत्येक नर नारी बच्चे बूढ़े की जेब में रहनी चाहिये। इस में मनुष्य-जीवन की सफलता के सब साधन दिये गये हैं, पुस्तक को देखते ही मन प्रसन्न हो जायगा। मूल्य ॥-)

## ६-सन्ध्या-योग।

(लेखक स्वामी सत्यानन्द जी)

सन्ध्या पर इस से अच्छी व्याख्या आज तक किसी भाषा में नहीं छपी। इस छोटे से सजिल्द गुटके में सन्ध्या की व्याख्या और और प्राणायाम की विधि भी दे दी गई है। मूल्य ।-)

# ओंकार उपासना ।

( लेखक---स्वामी सत्यानन्द जी )

परम पिता परमात्मा का सर्वोत्तम नाम ओ३म् है । इस में ईश्वर के सम्पूर्ण स्वरूप का वर्णन वर्णन है । ओ३म् में ईश्वर के सब गुण आजाते हैं । बीज में पेड़ की भांति सब विशेषण इसी में समाए हुए हैं । श्री स्वामी जी ने इस पुस्तक में ओ३म् की बड़ी सुन्दर व्याख्या की है । भाषा मधुर तथा वर्णन शैली उत्तम है । मूल्य ≢)

# मुक्ति सोपान ।

लेखक-शहीदे धर्म स्वामी श्रद्धानन्दजी

इस में स्वाध्याय तथा ईश्वराधन की बहुत की बहुत सी सामग्री इकट्ठी की

गई है। स्वामीजी के वर्षों के अनुभव की बातें हैं और पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है मानों पुस्तक का प्रत्येक शब्द हमारे अपने हृदय से निकल रहा है।

एक प्रति तो अवश्य खरीदें। मूल्य ॥=)

## सरल योगाभ्यास।

लेखक—स्वामी ओंकारानन्द सरस्वती।

इस पुस्तक में स्वामी जी ने अपने वर्षों के अनुभव के पश्चात् योग साधन की ऐसी सरल विधियां जो प्रत्येक स्त्री पुरुष गृहस्थी कर सकता है लिखी हैं योग साधन से शारीरिक उन्नति पर कितना प्रभाव पड़ता है यह भी बताया गया है।=)

गीता गुटका—(पाकेट साइज़ सुन-

हरी जिल्द) गीता के श्लोक बहुत बढ़िया व्याख्या सहित । मूल्य ॥) सस्ता संस्करण ≈)

## वैदिक दर्शन

लेखक—पं० चमूपति जी एम० ए०

इस पुस्तक में १-आत्मा परमात्मा २-सृष्टि की उत्पत्ति, ३-ज्ञान का प्रारम्भ ४-मुक्ति तथा उसके साधन और ५ सुख दुःख की समस्या-इन पांच अध्यायों में दिखाया गया है कि हमारे दार्शनिक मन्मव्यों का आधार वेद है। बड़ा उत्तम पुस्तक है। मू० =)

इनके अतिरिक्त वैदिक धर्म सम्बन्धी सब पुस्तकें हम से मिल सकती हैं।

राजपाल—मैनेजर आर्य्य पुस्तकालय

अनारकली लाहौर।